।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

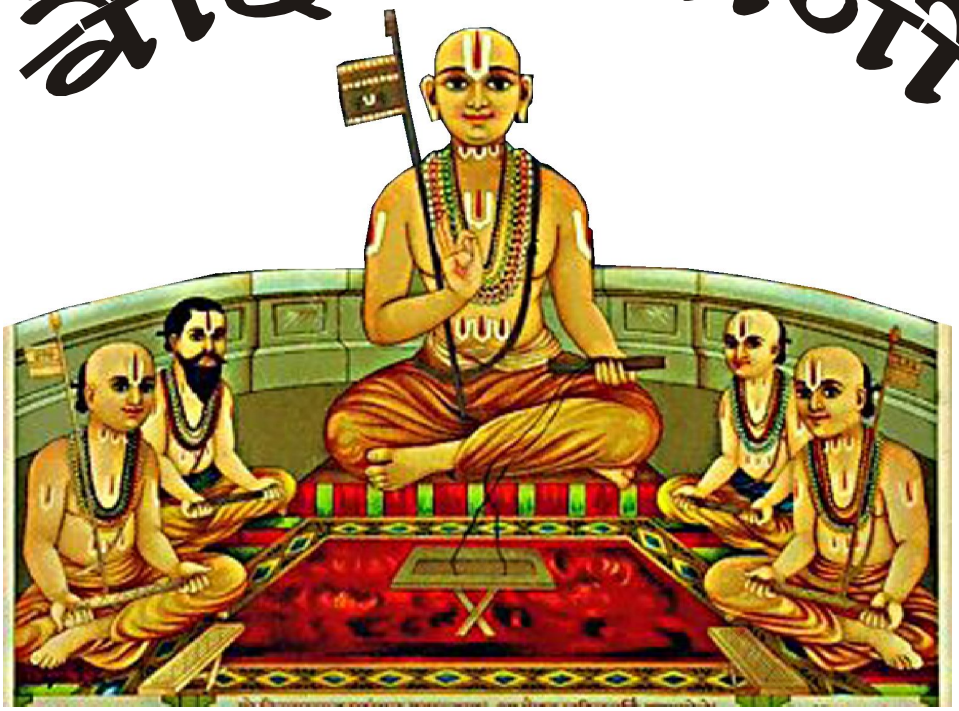

वर्ष- २९ सन्- २०१७ ई०	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अंक- ३ रामानुजाब्द १००० त्रैमासिक प्रकाशन

सकृत्त्वदाकारविलोकनाशया तृणीकृतानुत्तमभुक्तिमुक्तिभिः ।
महात्मभिर्मामवलोक्यतां नय क्षणेऽपि ते तद्विरहोऽतिदुस्सहः ।।

अर्थात् जिन महात्माओं ने केवल एक बार आपके श्री विग्रह के दर्शन की आशा में सर्वोत्कृष्ट भोगों तथा मोक्ष को तृण के समान समझा है, उन्हीं के समान मुझे भी उस दर्शन की योग्यता प्रदान करें; क्योंकि क्षण भर के लिये भी आपका विरह मुझे दुःसह प्रतीत हो रहा है ।।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

क्रम सं०	विषय	पृ०सं०
१.	वैदिक-वाणी–सन्तों के उपदेश में चार हेतु	३
२.	जीव ब्रह्म का अज्ञात सम्बन्ध	५
३.	सत्यव्रत	६
४.	अन्यायधन्य राजा	८
५.	भगवान् के द्वारा पुतनादि के उद्धार के कारण	९
६.	शेष द्वारा पृथ्वी का धारण	१४
७.	मूर्तिपूजा के विरुद्ध ग्यारह प्रश्न	१५
८.	सन्त की कृपा से सेठ बने पुत्रवान्	१७
९.	हनुमान जी का गरभंजन	१८
१०.	कविध्वज अर्जुन	२०
११.	आनन्द रामायण के अनुसार सरयू की उत्पत्ति का वर्णन	२२
१२.	कौसल्या के साथ राजा दशरथ का विवाह	२३
१३.	राजधर्म	२५
१४.	रामायण का यथार्थ श्रोता	२८
१५.	व्रज की गोपियाँ	२९
१६.	शेषावतार श्रीस्वामी रामानुजाचार्य सहस्राब्दी वर्ष	३३
१७.	श्रीभगवान् के अवतार की दिव्यता	३८
१८.	विविधमुहूर्त्ता	४०

●

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) ४५ रुपये तथा आजीवन सदस्यता ५०१ रुपये मात्र हैं।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

—सम्पादक

वैदिक-वाणी

सन्तों के उपदेश में चार हेतु

उपदेश शब्द का शाब्दिक अर्थ बताना या ज्ञान देना होता है। विभिन्न शास्त्रों में उपदेश पर व्याख्यान मिलते हैं। उपदेश क्या है? उसकी शैली कैसी है? आदि। उपदेश पर व्याख्यान देने-वाले शास्त्रों में लोक-तत्त्व बोधक शास्त्र और परतत्त्वबोधक शास्त्र दोनों हैं। चूँकि उपदेश शब्द का अर्थ बताना या ज्ञान देना होता है, अत: इसका मुख्य रूप से दो विभाजन किया जाता है–लौकिक उपदेश एवं पारलौकिक उपदेश। लौकिक उपदेश शैशवावस्था अर्थात् माँ की गोद से ही मिलना प्रारम्भ हो जाता है। प्रथम उपदेशक माता-पिता एवं परिजन ही होते हैं। पाठशाला स्वरूप घर से प्राप्त प्रथम उपदेश पर ही मानव खड़ा होकर शनै: शनै: चलते हुए जीवन रूपी यात्रा में दौड़ लगाता है और लोक व्यवहार में सात्त्विक वृत्ति का आश्रयण कर जीवन को सफल बनाने का प्रयास करता है।

प्रथम उपदेशक द्वारा दिया गया गलत उपदेश अथवा दिए गये सही उपदेश के अनुपालन में हुयी भूल के कारण मानव अनेक प्रकार के कठिनाईयों से युक्त होकर सङ्कट में पड़ जाता है। उपदेश की दूसरी अवस्था है–परतत्त्व विषयक ज्ञान या आत्म तत्त्व का ज्ञान जिससे मानव तन की सार्थकता के साथ-साथ सभी कष्टों से सर्वथा विमुक्ति मिलती है। वह ज्ञान सन्तों के उपदेश से ही मिलता है। सन्तों के उपदेश में चार हेतु हैं।

हमारे आचार्य बतलाले हैं कि उत्तमपुरुष चार कारणों से दूसरों को उपदेश देते हैं—

(१) यह समझकर कि भगवान् ने इस कार्य के लिये ही हमें इस संसार में भेजा है।

(२) शिष्यों की सविनय प्रार्थना पर।

(३) शिष्यों की दुरवस्था देखकर स्वयं दु:खी होने के कारण।

(४) किसी को कुछ उपदेश किये विना अपने मन में शान्ति नहीं होने के कारण।

शास्त्रमर्यादा को भी तोड़ डालने वाली सीमातीत दया के कारण उदासीन शत्रु आदि को भी उपदेश देने वाले ये कतिपय आचार्य हुए हैं—सीताजी, प्रह्लादजी, विभीषण जी, श्रीशठकोपसूरि, श्रीस्वामी रामानुजाचार्य जी महाराज इत्यादि।

ऐसे उपदेशकों में जगज्जननी सीताजी का नाम सर्वप्रथम लिया गया है। लोक विख्यात कथा के अनुसार सीताजी का अपहरण राक्षसराज रावण ने किया था, किन्तु सत्य यह है कि सीताजी स्वेच्छया लङ्का गयी थी; क्योंकि पूर्व जन्म में उन्होंने रावण को सदुपदेश देने का वचन दिया था। इस अवतार के पूर्व सीता (लक्ष्मी) जी इस धरा धाम पर कुशध्वज की वाङ्मयी कन्या वेदवती के नाम से अवतरित हुयीं थी। वेदवती को लङ्का ले जाने का कुत्सित प्रयास रावण ने उस समय भी किया था, तब सीताजी ने रावण से कहा था कि मैं पुन: लङ्का में आऊँगी और तुम्हारा (अहङ्कार, अत्याचार, अधर्मीपन आदि का) नाश करुँगी। अपनी इसी वचनबद्धता की पूर्ति के लिए सीताजी रावण को सदुपदेश देने के लिए लङ्का गयीं हैं। यद्यपि रावण ने सदा उनका अनिष्ट करना चाहा; परन्तु सीताजी रावण के तात्विक दु:ख से दु:खी हो उसे भगवान् से मिलाने के निमित्त अर्थात् शरणागत

कराने हेतु अपनी जान जोखिम में डालकर लङ्का जाने की लीला रची। लङ्का में रावण से सीताजी कहती हैं।

रावण! तुम मेरी ओर से अपने मन को हटा लो और अपनी पत्नियों से प्रेम करो। जैसे पापाचारी पुरुष सिद्धि की इच्छा नहीं करता है, उसी प्रकार तुम मेरी प्राप्ति की इच्छा मत करो। मैं पतिव्रता नारी हूँ। इसलिए निन्दित कर्म नहीं कर सकती। मैं महान कुल में उत्पन्न हुई हूँ और मेरा विवाह भी एक पवित्र कुल में हुआ है। तदनन्तर सीताजी रावण की तरफ पीठ करके कहती हैं कि रावण! मैं सती और दूसरे की स्त्री हूँ। अत: तुम्हारी भार्या बनने योग्य नहीं हूँ। तुम उत्तम धर्म की ओर दृष्टि करो और सत्पुरुषों के मार्ग पर चलो। जैसे तुम्हारी स्त्रियाँ तुमसे संरक्षण पाती हैं, उसी प्रकार तुम्हें दूसरे की स्त्री को संरक्षण देना चाहिए। तुम आदर्श बनकर अपनी स्त्रियों में अनुरक्त रहो। जो अपनी स्त्रियों में अनुरक्त न होकर परायी स्त्री से प्रेम करना चाहता है उसे महान कष्ट होता है। रावण! तुम्हारी विपरीत बुद्धि और सदाचार हीनता को देखकर लगता है कि इस लङ्का में सत्पुरुष नहीं रहते हैं अथवा रहते भी होंगे तो तुम उनके वचनों का पालन नहीं करते होगे।

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे।
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता।।

(वा०रा०-५।२१।९)

बुद्धिमान पुरुष जो तुम्हें हित की बात बताते हैं उनकी बात न मानकर निशाचरों के संहार के लिए तुम तुले हुए हो। इसीलिए महापुरुषों के हितकर वचन तुम्हें प्रिय नहीं लगते हैं। जिसका मन अपवित्र है और जो सदुपदेश को ग्रहण नहीं करता है वैसे अन्यायी राजा के बड़े-बड़े राज्य और नगर नष्ट हो जाते हैं। यह सम्पूर्ण लङ्कापुरी तुम्हारे अधिकार में रहने के कारण तुम्हारे अपराध से शीघ्र ही नष्ट हो जाएगी। पापाचारी अपने कुकर्मों से नष्ट हो जाता है। उससे सभी प्राणियों को प्रसन्नता होती है। तुमने जिन-जिन लोगों को कष्ट पहुँचाया है, वे सब तुम्हें नष्ट होने पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहेंगे कि बहुत अच्छा हुआ।

इसी प्रकार प्रह्लाद जी ने भी उन राक्षसों को उपदेशित किया, जो उन्हें सन्ताप देते थे। प्रह्लाद जी ने उनके द्वारा प्राप्त संताप को उनकी अज्ञानता मानकर उन्हें सत्पथ पर लाने हेतु श्रीहरि के शरणागत होने का उपदेश देते थे। विभीषण जी रावण को सदुपदेश देने में ही दण्डित हुए थे और अपमान पूर्वक राज्य (घर) से निर्वासित किए गए थे। शठकोप स्वामी, भगवद् रामानुजाचार्य, परमहंस स्वामी (श्रीराजेन्द्राचार्य) जी महाराज, स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज, स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज आदि उसी आचार्य परम्परा के लड़ी की कड़ी के रूप में उपर्युक्त हेतु की पूर्तिकर्त्ता स्वरूप हैं।

●

अहङ्कार

अहङ्कार नामक एक चाण्डाल है। ममता नाम की उसकी स्त्री है। राग-द्वेष नामक उसके बच्चे हैं। इस एक अहङ्कार का वध कर दिया जाय तो ये सब मर जाते हैं। अर्थात् अहङ्कार के ममता रूपी भार्या पतिव्रता होने के कारण साथ ही प्राण त्याग करेगी। पालनकर्त्ता कोई न होने से व्याकुल हो बच्चे भी आपसे आप मर जायेंग।

अहङ्कार एक सर्प है। ममता उसका शरीर है। राग-द्वेष उसके दाँत हैं, इन दाँतों को निकाल दिया जाय तो वह मर जायेगा।

जीव ब्रह्म का अज्ञात सम्बन्ध

किसी एक नगर में एक धनवान् सेठ रहता था। वह कदाचित् व्यापार करने के लिए द्विपान्तर में चला गया और कार्यवश बहुत वर्षों तक वहाँ रह गया। उसके जाने के समय उसकी पत्नी गर्भवती थी, बाद में उसकी पत्नी को एक बालक पैदा हुआ। सेठ को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ। घर से वह ठीक-ठीक पत्र-व्यवहार भी करता रहा; परन्तु अनेक वर्षों तक वह स्वदेश नहीं लौट सका। बहुत समय के बाद वह विभिन्न देशों के अनेक पदार्थ लेकर स्वदेश लौटा। यहाँ पर उस सेठ का पुत्र भी बड़ा होकर व्यापार करने के लिए विदेश चला गया और बहुत सामान के साथ स्वदेश आने के लिए रवाना हुआ; परन्तु दैवयोग से ऐसी घटना बनी कि ये दोनों–पिता व पुत्र एक ही जहाज से स्वदेश लौट रहे थे।

जहाज के बन्दरगाह पहुँचने पर सभी लोग अपना-अपना सामान उतारने लगे। ये दोनों सेठ भी उस बन्दरगाह पर दैवयोग से एक जगह अपना सामान उतारकर, धीरे-धीरे उन्हें उचित स्थान पर ले जाने के लिए विचार कर रहे थे। इन्हें आपस में परिचय न था, अर्थात् पिता अपने पुत्र से अपरिचित था और पुत्र भी अपने पिता को नहीं पहचानता था। इस प्रकार उन अपरिचित दो व्यक्तियों ने जब एक ही स्थान पर अपना-अपना सामान उतारा, तब सहज में ही उनमें संघर्ष हुआ, बहुत वाद-विवाद चला। उतने में वहाँ पर एक वृद्ध उपस्थित हुआ जिसे उन दोनों की ठीक-ठीक जानकारी थी। आपस में झगड़ते हुए इन्हें देखकर वह हँस पड़ा और बोला—'बाप-बेटे दोनों क्या एकदम पागल हो गये हो, जो ऐसे लड़ते हो? इतने से ही दोनों ने अपना परस्पर सम्बन्ध जान लिया। फिर क्या हुआ? यही हुआ कि दोनों की सम्पत्ति एक हो गयी और दोनों सानन्द वार्तालाप करते हुए स्वस्थान पहुँच गए।

दूसरी कथा यह है कि एक राजपुत्र, एक दिन घूमने के लिए शहर से निकला। इधर-उधर घूमते-घूमते वह एक उपवन के द्वार पर पहुँचा। उपवन बाहर से बड़ा सुन्दर दीख पड़ा और राजपुत्र के मन में अन्दर जाकर देखने की इच्छा हुई; परन्तु द्वार पर दो चौकीदार खड़े थे, जो राजकुमार की दृष्टि से भयङ्कर थे। उनसे डरते हुए राजकुमार ने अपने हृदय की इच्छा को दबाकर अन्यत्र आगे बढ़ना चाहा; परन्तु उपवन देखने की इच्छा ने उसे ऐसे करने से रोक दिया। उसके साथ एक नौकर था, राजपुत्र ने उससे अपनी चिन्ता सुना दी। नौकर ने विनती की—प्रभो! यह उपवन श्रीमान् के पिताजी का ही है, ये चौकीदार भी आपके ही नौकर हैं, अत: सरकार बिना सङ्कोच उपवन में प्रवेश कर सकते हैं। यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न राजकुमार ने उन चौकीदारों को बुलवाकर आज्ञा दी कि मुझे इस बगीचे की सारी विशेषताएँ दिखला दो। इन दोनों कथाओं में अपने पिता का सम्बन्ध न जानने के कारण उनकी सम्पत्ति के बारे में पुत्र के मन में ईर्ष्या, भय आदि उत्पन्न हुए, सम्बन्ध ज्ञात हो गया, तो पुत्र उस सम्पत्ति को नि:सङ्कोच अपना अनुभव करने में समर्थ हुआ। ठीक इसी प्रकार हम भी भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध के परिचय न होने से द्वेष, ईर्ष्या, भय, संशय आदि नाना प्रकार की दु:खद भावनाओं के वश बनते हैं। यदि हम भी सम्बन्ध जान लेंगे तो, फिर किसी प्रकार का दु:ख नहीं होगा।

सत्यव्रत

उतथ्य मुनि सत्य बोलने का व्रत पालन करते हैं, यह बात सभी लोग जानते थे। सारी जनता में उनका यश फैल गया कि ये सत्यव्रत हैं, कभी भी इनके मुख से मिथ्या वाणी नहीं निकलती।

एक समय की बात है, एक महान् मूर्ख जङ्गली आदमी शिकार खेलते हुए वहाँ आ पहुँचा। उसके हाथ में धनुष-बाण थे। उस घोर वन में शिकार करते समय यमराज के समान वह भयङ्कर जान पड़ता था। उसकी सकल-सूरत (वेष-भूषा) बड़ी डरावनी थी। हिंसा-वृत्ति में वह बड़ा ही निपुण था। उस धनुषधारी किरात के बाण से एक सूअर बिंध गया था। अत्यन्त भयभीत होकर भागता हुआ वह सूअर बड़ी शीघ्रता से उतथ्य मुनि के पास पहुँचा। जब आश्रम में आया, तब उस सूअर का शरीर थर-थर काँप रहा था। उसकी देह रूधिर से लथपथ हो गया था। दया का वह महान् पात्र हो गया था। उस दीन-हीन पशु पर उतथ्य मुनि की दृष्टि पड़ गयी। रूधिर से भीगे शरीर वाला वह सूअर मुनि के सामने ही दौड़ा जा रहा था। अभी तुरन्त उसे चोट लगी थी। दया के उद्रेक से उतथ्य मुनि काँप उठे। फिर तो उनके मुख से सास्वत-बीज 'ऐ' का उच्चारण हो गया। पहले इस मन्त्र को न कभी जाना था और न सुना ही था। किसी अदृष्ट की प्रेरणा से मुख में आ गया। वे महात्मा उतथ्य तो नितान्त अज्ञानी थे। उन्हें सारस्वत बीज मन्त्र का क्या पता, किन्तु शोक में पड़ जाने पर उनके मुख से यह उच्चारण हो गया। इधर वह सूअर आश्रम में जाकर एक सघन झाड़ी में छिप गया। वहाँ किसी के पहुँचने का मार्ग नहीं था। अब उसे मन में शान्ति मिली, किन्तु बाण से बिंधा होने के कारण उसका शरीर काँप रहा था। उसके बाद तुरन्त वह निषादराज शिकारी कान तक बाण खींचे हुए धनुष हाथ में लिये उतथ्य मुनि के सामने आ पहुँचा। उसका शरीर बड़ा ही भयङ्कर था। शिकार खेलते समय वह जान पड़ता था कि मानो स्वयं काल ही है। उस व्याध ने देखा अद्वितीय सत्यवादी नाम से विख्यात उतथ्य मुनि कुश के आसन पर बैठे हैं। उसने सामने खड़े होकर प्रणाम किया और पूछा—द्विजवर! सूअर कहाँ गया? मैं जानता हूँ आप प्रसिद्ध सत्यव्रती हैं। अत: अब मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि मेरे बाण से बिंधा हुआ वह सूअर कहाँ है। मेरा सारा परिवार भूख से छटपटा रहा है। मैं उस परिवार की क्षुधा शान्त करने की इच्छा से ही आया हूँ।

द्विजवर! ब्रह्मा ने मेरे लिये यही वृत्ति बनायी है। दूसरा कोई रोजगार नहीं है। मैं बिल्कुल सत्य कहता हूँ। अच्छे अथवा बुरे-किसी उपाय से कुटुम्ब का भरण-पोषण करना तो अनिवार्य ही है। ब्राह्मण देवता! आप सत्यव्रती हैं। सच्ची बात बतला दें। इस समय मेरे बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं। बाण से बिंधा हुआ वह सूअर कहाँ गया है? पूछता हूँ, शीघ्र कहिये।

इस प्रकार उस व्याध के पूछने पर महाभाग उतथ्य मुनि के मन में भाँति-भाँति के विचार उठने लगे। सोचा, नहीं देखा है—यह कहने पर कौन-सा उपाय है कि जिससे मेरा सत्यव्रत नष्ट न हो; परन्तु सत्य हो अथवा असत्य, मैं यह भी कैसे कहूँ कि बाण से बिंधे हुए शरीर वाला सूअर इधर गया है। यह क्षुधातुर व्याध तो पूछ ही रहा है, उसे देखकर यह मार ही डालेगा।

सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा,
दयान्वितं चानृतमेव सत्यम्।
हितं नराणां भवतीह येन
तदेव सत्यं न तथान्यथैव।। (३.११.३६)

वह सत्य सत्य नहीं है, जिसमें हिंसा भरी हो। यदि दयायुक्त हो तो अनृत को भी सत्य ही कहा जाता है। जिससे मनुष्यों का हित होता हो, वही सत्य है। उसे असत्य नहीं कहा जाता। दोनों विरुद्ध पक्ष हैं। इस स्थिति में मेरा हित कैसे हो? मैं क्या उत्तर दूँ, जिससे मेरी वाणी भी झूठ न हो?

इस धर्मसङ्कट में पड़कर उतथ्य सोचते रहे; परन्तु किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके। जब उतथ्य ने बाण से बिंधे हुए दयापात्र सूअर को देखा था, तब उनके मुँह से अनायास 'ऐ' शब्द निकल पड़ा था, 'ऐ' भगवती का वाग्बीज मन्त्र है। अत: उसे सुनकर भगवती प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने उतथ्य को अलभ्य विद्या प्रदान कर दी। भगवती के वाग्बीज मन्त्र का उच्चारण हो जाने से मुनि को सम्पूर्ण विद्याएँ स्फुरित हो गयीं। प्राचीन समय में जैसे वाल्मीकि जी हो चुके हैं, वैसे ही उतथ्य मुनि एक महान् कवि बन गये। सत्य बोलने की अभिलाषा रखने वाले धर्मात्मा उतथ्य दयाशील तो थे ही। अब उन्होंने धनुष-बाण लेकर सामने खड़े हुए व्याध से यह एक श्लोक कहा—

या पश्यति न सा ब्रूते
या ब्रूते सा न पश्यति।
अहो व्याध स्वकार्यार्थी
किं पृच्छसि पुनः पुनः।।

(३.११.४१)

व्याध! देखने वाली जो आँख है, वह बोलती नहीं और जो वाणी बोलती है, उसने देखा नहीं, फिर तुम अपना कार्य साधने की धुन में लगे हुए क्यों बार-बार हमसे पूछ रहे हो?

मुनिवर उतथ्य को यों कहने पर वह पशुघाती व्याध चला गया। सूअर के विषय में उसकी आशा नष्ट हो गयी। जैसे आया था, वैसे ही वह अपने स्थान को लौट पड़ा। अब वे ही उतथ्य एक-दूसरे वाल्मीकि की भाँति प्रकाण्ड विद्वान् हो गये। सारे भूमण्डल में सत्यव्रत नाम से उनकी प्रसिद्धि हो गयी।

ब्रह्म की जन्म परम्परा बन्द नहीं होती

हम संसारी लोग भी बारम्बार अनेक योनियों में जन्म लेते हैं एवं भगवान् भी ऐसे ही करते हैं। हमारी जन्म परम्परा एक दिन बन्द हो जाती है, किन्तु भगवान् के जन्म तो कभी समाप्त ही नहीं होते। इसका कारण यही है कि पुण्यपापरूप कर्मकृत होने से, जब यह कर्म सर्वथा नष्ट हो जायेगा, तब हमारा जन्म भी रूक जायेगा। भगवान् के जन्मों का कारण तो चेतनों के प्रति आपकी कृपा ही है, न तु कर्म, कृपा तो कभी भी बन्द नहीं होगी, अत: तत्प्रयुक्त जन्म भी सर्वदा बने रहेंगे न तु कदापि विरत होंगे, (ऐसे जनन से मलिन न होते हुए) इत्यादि। संसार में जन्म लेने वाले हम तो और भी अनेक कर्म करते हुए मलिन बनते हैं; परन्तु भगवान् जन्म लेने पर मलिन नहीं होते हैं, किन्तु और भी प्रकाशमान होते हैं, कारण कि जन्म में उनकी कृपा का प्रकाशन होता है। अत एव श्रुति ने कहा—**'स उ श्रेयान् भवति जायमानः'**। इस वाक्य का यह अर्थ है—स: = भगवान्, उन्हीं, जायमान: = जन्म लेते हुए, श्रेयान् = श्रेष्ठ (अथवा उज्ज्वल), भवति = होता है। अर्थात् भगवान् जन्म लेकर और भी उज्ज्वल होते हैं।

अन्यायधन्य राजा

अन्यायधन्य राजा के नगर में एक चोर ने किसी के मकान में चोरी करने के उद्देश्य से दीवार में सेंध लगायी थी। दिवार गीली थी, अत: वह गिर गयी और चोर उसके नीचे दबकर मर गया। प्रात:काल होने पर चोर के पुत्री-पुत्रादि को इस बात की खबर मिली और उन्होंने उस मकान के स्वामी को राजा के पास ले जाकर उस पर (चोर की) हत्या करने का अभियोग लगा दिया। राजा ने उससे कहा—'तुम्हारी दिवार गीली थी, अत: बेचारा यह चोर मर गया, अत: यह तुम्हारा अपराध हुआ जिसके लिए अब तुम्हें दण्ड भोगना पड़ेगा। गृहस्थ ने उत्तर दिया कि, सरकार यह तो दीवार बनाने वाले राज का दोष है, मेरा नहीं। राजा ने राज को बुलाकर सुदृढ़ दीवार न बनाने के कारण उसे दण्ड देने की धमकी दी। उसने कहा—मिट्टी में पानी मिलाने वाले नौकर ने अधिक पानी मिलाया, फलत: मिट्टी पतली हो गयी और दीवार गिर गयी। अत: यह अपराध उस नौकर का है। फिर नौकर को बुलाया गया। उसने कहा कि कुम्हार ने मुझे बड़ा घड़ा दिया, जिससे पानी माप से अधिक हो गया। कुम्हार ने कहा—

मैं तो प्रमाण के अनुसार ही घड़ा बनाने वाला था; परन्तु ठीक उसी समय मेरे घर के सामने से एक वेश्या निकली, मेरा ध्यान उस पर चला गया और फलत: घड़ा बड़ा हो गया। तब वेश्या को बुलाया गया। उसने अरज की, मैंने धोबी को अपना कपड़ा दिया था। उसने ठीक समय पर उसे नहीं लौटाया। अत: मुझे उसके घर जाना पड़ा। मैं वहाँ जाती थी। मुझे इस कुम्हार की चिन्ता थोड़ी थी, फिर धोबी की बारी आयी। उसने विनती की—प्रभो! मैं कभी कपड़ा लौटाने में विलम्ब नहीं करता; परन्तु उस दिन के बारे में मैं क्या कहूँ? मैं तो बड़े सबेरे ही उठकर कपड़ा लेकर घाट पर गया; परन्तु कपड़ा धोने के पत्थर पर एक अवधूत साधु बैठा था, जो बहुत प्रयत्न करने पर भी वहाँ से उठा नहीं। फलत: मुझे कपड़ा धोये बिना ही घर लौटना पड़ा। फिर राजा की आज्ञा से सेवकों ने बहुत प्रयत्न से उस साधु को ढूँढ कर राजा के पास लाया। राजा ने उससे पूछा, तुमने क्यों कल पत्थर पर बैठकर इस धोबी को अपना काम करने नहीं दिया। साधु तो एकदम मौनी थे और शायद विदेशी भी। जो भी हो। वह चुप रह गया, तब राजा ने सोचा, दूसरे सभी ने सकारण अपने को निर्दोष बताया; परन्तु यह साधु अपना मुख खोलता नहीं। इसका कारण यही होगा कि यह अपने को दोषी ही मान रहा है। यह सोचकर उसने साधु को सूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी। तब से यह कहावत बनी कि सभी अपराध अवधूत साधु पर लगाये जाते हैं।

●

जीव-ब्रह्म का नवविध सम्बन्ध

पिता च रक्षको शेषी भर्ता ज्ञेयो रमापति: । स्वाम्याधारो ममात्मा च भोक्ता चेति मनूदित: ।।

(१) पिता-पुत्र सम्बन्ध, (२) रक्ष्य-रक्षक सम्बन्ध, (३) शेषि-शेष सम्बन्ध, (४) भर्तृ-भार्या सम्बन्ध, (५) ज्ञातृ-ज्ञेय सम्बन्ध, (६) स्वस्वामि सम्बन्ध, (७) शरीर-शरीरि सम्बन्ध, (८) आधार आधेय सम्बन्ध, (९) भोक्तृ-भोग्य सम्बन्ध। संसार में एक सम्बन्ध के कारण मानव जीवन भर ध्यान रखता है। हे प्रभो! आपके साथ तो मेरा नव प्रकार का सम्बन्ध है। अत: आप मुझे कैसे त्याग देंगे।

भगवान् के द्वारा पुतनादि के उद्धार के कारण

श्रीहरि नारायण की लीला का रहस्य का ज्ञान सबों को नहीं हो सकता। उनके द्वारा रचित लीलाओं को देखने, समझने तथा जानने का अधिकारी वही हो सकता है, जिसने शास्त्रों का श्रद्धापूर्वक गहन अध्ययन, सन्तों की सङ्गति एवं श्रीहरि के चरणों में भक्ति की है। महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र की सभा में जब भगवान् ने अपना विराट स्वरूप दिखलाया था, तब सभी लोगों की आखें बन्द हो गयी थी। भगवान् के विराट रूप का कुछ आंशिक दर्शन दो ही व्यक्ति कर सके। राजा धृतराष्ट्र एवं विदुर। भगवान् की यह कैसी विचित्र लीला है, सभा के मध्य बड़े-बड़े वीर एवं ज्ञानी विराजमान थे, सभी नेत्रवान थे, उन नेत्रवानों में किसी ने भगवान् के दिव्य स्वरूप का दर्शन नहीं किया, किन्तु जन्मान्ध धृतराष्ट्र ने भगवान् के दिव्य विराट स्वरूप का कुछ दर्शन अवश्य किया। क्यों? इसका मर्म है कि जब सभामध्य भगवान् ने क्रोधावेश का अभिनय कर विराट स्वरूप प्रदर्शित करने की घोषणा की तब महान् घोर शब्द हुआ। वह शब्द इतना कठोर था कि पृथिवी हिलने लगी। दशों दिशाएँ काँप उठीं। फलतः सभी लोग भयभीत होकर वेसुध हो गए, किन्तु राजा धृतराष्ट्र जो जन्म से अन्धे थे, उन्हें भगवान् के क्रोध का अनुभव सम्यक् प्रकार से नहीं हुआ और वे यह सोचने लगे कि सभी लोग भगवान् के दिव्य स्वरूप का दर्शन लाभ ले रहे हैं, किन्तु मैं जन्मान्ध होने से श्रीभगवान् के दर्शन से वञ्चित रह गया। उन्हें जन्मान्ध होने का अत्यधिक दुःख हुआ। जीवन में इसके पूर्व उन्हें जन्माध होने का इतना दुःख कभी नहीं हुआ था। सर्वेश्वर भगवान् से भला ये बातें कैसे छिपी रहती। वे तो भक्तों के मनोरथ को पूर्ण करने वाले हैं। भक्त जिस अंश में जैसी भक्ति करता है, भगवान् करुणा करके उसे उसका फल अवश्य दे देते हैं। शास्त्रों में प्रायश्चित को भी भक्ति का रूप माना गया है, भक्त जब अपनी गलती, अज्ञानता, अकर्मण्यता आदि का सत्यतापूर्वक अनुभव कर स्वीकार करते हुए प्रायश्चित कर भगवान् से क्षमा की याचना करता है, तब वह वात्सल्य गुण सागर उसे भक्त मानकर उसकी गलती को क्षमा कर देते हैं। राजा धतृराष्ट्र को भी अपनी जन्मान्धता का महान् क्लेश हुआ था और उन्हें लगा था कि यदि मैं जन्मान्ध नहीं होता तो श्रीहरि का दर्शन मैं भी अवश्य करता। इसी से भगवान् श्रीहरि ने कुछ क्षण के लिए धृतराष्ट्र को नेत्रज्योति से संवलित कर दिया।

श्रीहरि के दिव्य विराट स्वरूप का दर्शन करने वाले द्वितीय व्यक्ति भक्तप्रवर विदुर जी थे। चूँकि वे भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में सदा भक्ति का भाव रखते हुए अपना कर्त्तव्य निर्वहण करते थे, अतः वे श्रीहरि के दिव्य स्वरूप के दर्शनार्थी बने। तात्पर्य यह है कि सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा रचित लीलाओं का रहस्य तात्कालिक घटनाओं पर आधारित न होकर पूर्वकाल से सम्बन्ध रखता है। श्रीभगवान् का अवतार सभी युगों में हुआ है और उस अवतार में श्रीभगवान् ने उस युग के अनुरूप लीलाओं की संरचना की है। भगवान् जगन्नियन्ता हैं, अतः उनके अधीन देव, दानव, पशु, पक्षी आदि समस्त चराचर जगत् है। श्रीभगवान् को देवताओं द्वारा सम्पादित कार्यों का भी ध्यान रखना पड़ता है, अन्यथा अवतार और लीला का रहस्य ही समाप्त हो जायेगा। वे किसी अवतार में सद्यः अपनी अपरिमीत शक्ति का प्रयोग तो कर नहीं सकते; क्योंकि वे अवतारी होते हुए भी अवतार के नियमों से स्वयं को आबद्ध रखते हैं, यदि वे ऐसा नहीं करते तो यह उनका कार्य होगा, लीला नहीं; परन्तु

भगवान् का तो हर कार्य लीला का अङ्ग मात्र है। सत्ययुग एवं त्रेतायुग के अवतार काल में अनेक ऐसी घटनाएँ घटी हैं, जिसका समापन द्वापर के कृष्णावतार में भगवान् द्वारा किया गया है। इसमें भी महान् रहस्य है। जिन-जिन दैत्यों का उद्धार भगवान् श्रीकृष्ण ने किया है, वे सभी के सभी अपने पूर्वजन्मकृत पापों से आबद्ध थे। पूतना आदि श्रीभगवान् से पूर्वजन्म में भक्तिपूर्वक वरदान माँगी थी, किन्तु पापाचार से आबद्ध होने के कारण भगवान् ने उन सबों को तत्काल मनोरथ सिद्ध नहीं किया, बल्कि कर्मफल को भोगने हेतु द्वापर का समय दे दिया। पूतना की भाँति अनेक कथाएँ पूर्वकाल (पूर्वजन्म या पूर्वयुग) से सम्बद्ध होने के प्रमाण शास्त्रों में मिलते हैं, उनमें सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से सम्बद्ध प्रमुख कथाओं का पूर्वापर सम्बन्ध का वर्णन दिया जा रहा है—

पूतना का पूर्वजन्म वृत्तान्त

पूर्वकाल में राजा बलि के यज्ञ में भगवान् वामन के परम उत्तम रूप को देखकर बलिकन्या रत्नमाला ने उनके प्रति पुत्रोचित स्नेह किया था। उसने मन-ही-मन यह सङ्कल्प किया था कि यदि मेरे भी ऐसा ही बालक उत्पन्न हो और उस पवित्र मुसकान वाले शिशु को मैं अपना स्तन पिला सकूँ तो उससे मेरा चित्त प्रसन्न हो जायेगा। बलि भगवान् के परम भक्त थे, अत: उनकी पुत्री को वामन भगवान् ने यह वर दिया कि तेरे मन में जो मनोरथ है, वह पूर्ण होगा। वही रत्नमाला द्वापर के अन्त में पूतना नाम से विख्यात राक्षसी हुई। अब भगवान् श्रीकृष्ण के स्पर्श से उसका उत्तम मनोरथ सफल हो गया।

उत्कच का पूर्वजन्म वृत्तान्त

यह उत्कच पूर्व जन्म में हिरण्याक्ष का पुत्र था। एक दिन वह लोमश जी के आश्रम पर गया और वहाँ उसने आश्रम के वृक्षों को ध्वस्त कर दिया। स्थूल देह से युक्त महाबली उत्कच को खड़ा देख ब्राह्मण-ऋषि ने रोषयुक्त होकर उसे शाप दे दिया—ओ दूर्मते! तू देह रहित हो जा। उसी कर्म के परिपाक से उसका वह शरीर सर्प-शरीर से केंचुल की भाँति छूटकर गिर पड़ा। यह देख वह महान् दानव मुनि के चरणों में गिर पड़ा और बोला—हे मुने! आप कृपा के सागर हैं। मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये। भगवन् मैंने आपके प्रभाव को नहीं जाना। आप मेरी देह मुझे दे दीजिये।

लोमश जी बोले—चाक्षुष-मन्वन्तर तक तो तेरा शरीर वायुमय रहेगा। इसके बीत जाने पर वैवस्त-मन्वन्तर आयेगा। उसी समय (अट्ठाईसवें द्वापर के अन्त में) भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श होने से तेरी मुक्ति हो जायेगी।

तृणावर्त का पूर्वजन्म वृत्त

पाण्डुदेश में सहस्राक्ष नाम से विख्यात एक राजा थे। उनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी। भगवान् विष्णु में उनकी अपार श्रद्धा थी। वे धर्म में रूची रखते थे। यज्ञ और दान में उनकी बड़ी निष्ठा थी। एक दिन वे रेवा (नर्मदा) नदी के दिव्य तट पर गये। लताएँ और बेंत उस तट की शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँ सहस्रों स्त्रियों के साथ आनन्द का अनुभव करते हुए वे विचरने लगे। उसी समय स्वयं दुर्वासा मुनि ने वहाँ पदार्पण किया। राजा ने उनकी वन्दना नहीं की, तब मुनि ने शाप दे दिया। तू राक्षस हो जा। फिर तो राजा सहस्राक्ष दुर्वासा जी के चरणों में गिर पड़े। तब मुनि ने उन्हें वर दिया—राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण के विग्रह का स्पर्श होने से तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी। श्रीनारद जी कहते हैं—हे राजन्! वे ही राजा सहस्राक्ष दुर्वासा जी के शाप से भूमण्डल पर 'तृणावर्त' नामक दैत्य हुए थे। भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य श्रीविग्रह का स्पर्श होने से उनको सर्वोत्तम मोक्ष (गोलोक धाम) प्राप्त हो गया।

बकासुर का पूर्वजन्म वृत्तान्त

'ह्यग्रीव' नामक दैत्य के एक पुत्र था, जो 'उत्कल' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने समराङ्गण में देवताओं को परास्त करके देवराज इन्द्र के छत्र को छीन लिया था। उस महाबली दैत्य ने और भी बहुत-से मनुष्यों तथा नरेशों की राज्य सम्पत्ति का अपहरण करके सौ वर्षों तक सर्ववैभव सम्पन्न राज्य का उपभोग किया। एक दिन इधर-उधर विचरता हुआ दैत्य उत्कल गङ्गासागर सङ्गम पर सिद्ध मुनि जाजलि की पर्णशाला के समीप गया और पानी में बंसी डालकर बारम्बार मछलियों को पकड़ने लगा। यद्यपि मुनि ने मना किया, तथापि उस दुर्बुद्धि ने उनकी बात नहीं मानी। मुनिश्रेष्ठ जाललि सिद्ध महात्मा थे, उन्होंने उत्कल को शाप देते हुए कहा—अरे दुर्मते! तू बगुले की भाँति मछली पकड़ता और खाता है, इसलिये बगुला ही हो जा।

फिर क्या था? उत्कल उसी क्षण बगुले के रूप में परिणत हो गया। तेजोभ्रष्ट हो जाने के कारण उसका सारा गर्व गल गया। उसने हाथ जोड़कर मुनि को प्रमाण किया और उनके दोनों चरणों को पड़कर कहा। उत्कल बोला—हे मुने! मैं आपके प्रचण्ड तपोबल को नहीं जानता था। हे जाजालि जी! मेरी रक्षा कीजिये। आप जैसे साधु महात्माओं का सङ्ग तो उत्तम मोक्ष का द्वार माना गया है। जो शत्रु और मित्र में, मान-अपमान में, सुवर्ण और मिट्टी के ढेले में तथा सुख और दु:ख में भी समभाव रहते हैं, वे आप-जैसे महात्मा ही सच्चे साधु हैं। हे मुने! इस भूतल पर महात्माओं के दर्शन से मनुष्यों का कौन-कौन मनोरथ नहीं पूरा हुआ? ब्रह्मपद, इन्द्रपद, सम्राट् का पद तथा योगसिद्धि सब कुछ सन्तों की कृपा से सुलभ हो सकते हैं, हे मुनिश्रेष्ठ जाजले! आप-जैसे महात्माओं से लोगों को धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति हुई तो क्या हुआ? साधुपुरुषों की कृपा से तो साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा भी मिल जाते हैं। श्रीनारदजी कहते हैं—हे नरेश्वर! उस समय उत्कल की विनययुक्त बात सुनकर वे जाजलि मुनि प्रसन्न हो गये, जिन्होंने साठ हजार वर्षों तक तपस्या की थी। उन्होंने उत्कल से कहा। जाजलि बोले—वैवस्वत मन्वन्तर प्राप्त होने पर जब अट्ठाईसवें द्वापर का अन्तिम समय बीतता होगा, उस समय भारत वर्ष के माथुर-जनपद में स्थित व्रजमण्डल के भीतर साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावन में गोवत्स चराते हुए विचरेंगे। उन्हीं दिनों तुम भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो जाओगे।

अघासुर का पूर्वजन्म वृत्तान्त

शङ्खासुर के एक पुत्र था, जो अघ नाम से विख्यात था। महाबली अघ युवावस्था में अत्यन्त सुन्दर होने के कारण साक्षात् दूसरे कामदेव सा जान पड़ता था। एक दिन मलयाचल पर जाते हुए अष्टावक्र मुनि को देखकर अघासुर जोर-जोर से हँसने लगा और बोला—यह कैसा कुरूप है। उस महादुष्ट को शाप देते हुए मुनि ने कहा—'ओ दुर्मते! तू सर्प हो जा; क्योंकि भूमण्डल पर सर्पों की ही जाति कुरूप एवं कुटिल गति से चलने वाली होती है। ज्यों ही उसने यह सुना, उस दैत्य का सारा अभिमान गल गया और वह दीनभाव से मुनि के चरणों पर गिर पड़ा । उसे इस अवस्था में देखकर मुनि प्रसन्न हो गये और पुन: उसे वर दिया। अष्टावक्र ने कहा—करोड़ों कन्दर्पों से भी अधिक लावण्यशाली भगवान् श्रीकृष्ण जब तुम्हारे उदर में प्रवेश करेंगे, तब इस सर्परूप से तुम्हें छुटकारा मिल जायेगा। नारद जी कहते हैं—अष्टावक्र के शाप से सर्प होकर अघासुर उन्हीं के वरदान बल से उस परम मोक्ष को प्राप्त हुआ, जो देवताओं के लिये भी दुर्लभ है।

धोबी का पूर्वजन्म वृत्तान्त

धोबी पूर्वजन्म में कौन था और श्रीहरि ने उसका वध क्यों किया? त्रेतायुग की बात है, अयोध्यापुरी में श्रीरामचन्द्र जी राज्य करते थे। उनके राज्यकाल में प्रजा की मनोवृत्ति एवं दु:ख-सुख जानने के लिए गुप्तचर घूमा करते थे। एक दिन उन गुप्तचरों के सुनते हुए किसी धोबी ने अपनी भार्या से कहा—तू दुष्टा है और दूसरे के घर में रहकर आयी है, इसलिये अब तुझे मैं नहीं रखूँगा। स्त्री के लोभी राजा राम भले ही सीता को रख लें, किन्तु मैं तुझे नहीं स्वीकार करूँगा।

इस प्रकार बहुत से लोगों के मुख से आक्षेप युक्त बात सुनकर श्रीराघवेन्द्र ने लोकापवाद के भय से सहसा सीता को वन में त्याग दिया। रघु-कुल-तिलक श्रीराम ने उस धोबी को दण्ड देने की इच्छा नहीं की। वही द्वापर के अन्त में मथुरापुरी में फिर धोबी ही हुआ। उसने सीता के प्रति जो कुवाक्य कहा था, उस दोष की शान्ति के लिये श्रीहरि ने स्वयं ही उसका वध किया, तथापि उन श्रीकरुणानिधि ने उस धोबी को मोक्ष प्रदान किया।

दर्जी का पूर्वजन्म वृत्तान्त

पूर्वजन्म में दर्जी कौन था? पहले मिथिलापुरी में एक दर्जी था, जो भगवान् श्रीहरि के प्रति भक्तिभाव रखता था। उसने श्रीराम के विवाह के समय राजा सीरध्वज जनक की आज्ञा से श्रीराम और लक्ष्मण के दूलह वेष के लिये महीन डोरों से कपड़े सीये थे। वह वस्त्र सीने की कला में अत्यन्त कुशल था। करोड़ों कामदेवों के समान लावण्य वाले सुन्दर श्रीराम और लक्ष्मण को देखकर वह महामनस्वी दर्जी मोहित हो गया था। उसने मन-ही-मन यह इच्छा की कि मैं कभी अपने हाथों से इनके अङ्गों में वस्त्र पहिनाऊँ। श्रीरघुनाथ जी सर्वज्ञ हैं। उन्होंने मन-ही-मन उसे वर दे दिया कि द्वापर के अन्त में भारतीय व्रजमण्डल में तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। श्रीरामचन्द्र जी के वरदान से वही यह दर्जी मथुरा में प्रकट हुआ था, जिसने उन दोनों बन्धुओं की वेष रचना करके उनका सारूप्य प्राप्त कर लिया।

सुदामा माली का पूर्वजन्म वृत्तान्त

सुदामा माली ने, जिसके घर में परम मनोहर बलराम और श्रीकृष्ण स्वयं पधारे थे, कौन-सा पुण्य किया था? राजराज कुबेर का एक परम रमणीय सुन्दर वन है, जो चैत्ररथ-वन के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें फूल लगाने वाला एक माली था, जो हेममाली के नाम से पुकारा जाता था। वह भगवान् विष्णु के भजन में तत्पर, शान्त, दानशील तथा महान् सत्यसङ्गी था। उसने भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये देवताओं की पूजा की थी। पाँच हजार वर्षों तक प्रतिदिन तीन सौ कमल पुष्प लाकर वह भगवान् शङ्कर के आगे रखता और उन्हें प्रणाम करता था। एक समय करुणानिधि त्रिनेत्रधारी भगवान् शङ्कर उसके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—

हे परम बुद्धिमान् मालाकार! तुम इच्छानुसार वर मांगो। तब हेममाली ने हाथ जोड़कर महादेव जी को नमस्कार किया और परिक्रमा करके उनके सामने खड़ा हो मस्तक झुकाकर कहा—भगवन्! परिपूर्णतम प्रभु श्रीकृष्ण कभी मेरे घर पधारें और मैं इन नेत्रों से उनका प्रत्यक्ष दर्शन करुँ, ऐसी मेरी इच्छा है। आपके वरदान से मेरी यह अभिलाषा पूर्ण हो। श्रीमहादेव जी ने कहा हे महमते! द्वापर के अन्त में भारतवर्ष की मथुरापुरी में तुम्हारा यह मनोरथ सफल होगा, इसमें संशय नहीं है। महादेवजी के वरदान से यह महामना हेममाली ही द्वापर के अन्त में सुदामा माली हुआ था।

कुब्जा का पूर्व चरित्र

करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर श्रीरामचन्द्र

जी जब पञ्चवटी में रहते थे, उस समय शूर्पणखा नाम की राक्षसी उन्हें देखकर अत्यन्त मोहित हो गयी। श्रीरघुनाथजी एकपत्नीव्रत के पालन में तत्पर हैं, अत: इनके मन में दूसरी किसी स्त्री के प्रति मोह नहीं है। यह विचार कर रावण की बहिन क्रोध से सीता को खा जाने की लिये दौड़ी। उस समय श्रीराम के छोटे भाई लक्ष्मण ने रुष्ट होकर तीखी धार वाली तलवार से तत्काल उसकी नाक और दोनों कान काट लिये। नाक-कान कट जाने पर उसने लङ्का में जाकर रावण को यह सब समाचार बता दिया और स्वयं अत्यन्त खिन्नचित्त होकर वह पुष्कर तीर्थ में चली गयी। वहाँ जल में खड़ी हो भगवान् शङ्कर का ध्यान तथा श्रीराम को पतिरूप में पाने की कामना करती हुई शूर्पणखा ने दस हजार वर्षों तक तपस्या की। इससे प्रसन्न हो देवाधिदेव भगवान् उमापति पुष्कर-तीर्थ में आकर बोले—तुम वर माँगो। शूर्पणखा ने कहा—हे परम देवदेव आप समस्त कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ हैं, अत: मुझे यह वर दीजिये कि सत्पुरुषों के प्रिय श्रीरामचन्द्र जी मेरे पति हों। शिवजी ने कहा—हे राक्षसी सुनो! यह वर तुम्हारे लिये अभी सफल नहीं होगा। द्वापर के अन्त में मथुरापुरी में तुम्हारी यह कामना पूरी होगी, इसमें संशय नहीं। वही इच्छानुसार रूप धारण करने वाली 'शूर्पणखा' नाम की राक्षसी श्रीमथुरापुरी में 'कुब्जा' नाम से प्रसिद्ध हुई थी।

कुवलयापीड का पूर्व चरित्र

राजा बलि के एक विशालकाय एवं बलवान् पुत्र था, जिसका नाम था मन्दगति था। वह समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ एक लाख हाथियों के समान बलशाली था। एक समय श्रीरङ्गनाथ की यात्रा के लिये वह घर से निकला और जन-समुदाय में सम्मिलित हो गया। मन्दगति मतवाले हाथी के समान वेग से भुजाएँ हिला-हिलाकर वह लोगों को कुचलता जा रहा था। रास्ते में उसकी भुजाओं के वेग से बूढ़े त्रितमुनि गिर पड़े। उन्होंने कुपित होकर उस मतवाले बलिष्ठ बलिकुमार को शाप दे दिया। त्रित ने कहा—हे दुर्मते! तू हाथी के समान मदोन्मत्त होकर रङ्गयात्रा में लोगों को कुचलता जा रहा है, अत: हाथी हो जा। इस प्रकार शाप मिलने पर वह बलवान् दैत्य मन्दगति तत्काल तेजोभ्रष्ट हो गया और उसका शरीर केंचुल की भाँति छूटकर नीचे जा गिरा। मुनि के प्रभाव को जानने वाले उस दैत्य ने तुरन्त हाथ जोड़ प्रणाम और परिक्रमा करके त्रितमुनि से कहा—

आप द्विजों में श्रेष्ठ योगीन्द्र हैं। इस गजयोनि से मुझे कब छुटकारा मिलेगा, यह मुझे शीघ्र बताइये? हे मुने आज से आप-जैसे महात्माओं की अवहेलना मेरे द्वारा कभी नहीं होगी। हे ब्रह्मन्! आप जैसे मुनि वर और शाप–दोनों को देने में समर्थ हैं। उस दैत्य द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जाने पर महामुनि त्रित का क्रोध दूर हो गया। फिर उन कृपालु ब्राह्मण-शिरोमणि ने उस दैत्य से कहा—हे दैत्यराज! मेरी बात झुठी नहीं हो सकती, तथापि तुम्हारी भक्ति से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। इसलिये तुम्हें ऐसा दिव्य वर प्रदान करूँगा, जो देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। हे दैत्येन्द्र! शोक न करो। श्रीहरि की नगरी मथुरा में श्रीकृष्ण के हाथ से तुम्हारी मुक्ति होगी, इसमें संशय नहीं है। हे राजन्! वह यह मन्दगति दैत्य विन्ध्य पर्वत पर 'कुवलयापीड' नाम से विख्यात हाथी हुआ, जो बल में अकेला ही दस हजार हाथियों के समान था। उसको मगध राज जरासंध ने लाख हाथियों के सहयोग द्वारा वन में से पकड़वाया था।

अश्वशिरा और वेदशिरा

पूर्वकाल की बात है। स्वायम्भुव मन्वन्तर में वेदशिरा नाम के मुनि, जिनकी उत्पत्ति भृगुवंश में हुई थी, विन्ध्य पर्वत पर तपस्या करते थे, उन्हीं के आश्रम पर तपस्या करने के लिये अश्वशिरा मुनि

आये। उन्हें देखकर वेदशिरा मुनि के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वे रोषपूर्वक बोले—हे ब्रह्मन् मेरे आश्रम में तुम तपस्या न करो; क्योंकि यह अच्छी बात नहीं होगी। हे तपोधन! क्या और कहीं तुम्हारे तप के योग्य भूमि नहीं है? वेदशिरा की यह बात सुनकर अश्वशिरा मुनि के भी नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वे मुनिपुङ्गव से बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! यह भूमि तो महाविष्णु की है, न तुम्हारी है न मेरी। यहाँ कितने मुनियों ने उत्तम तप का अनुष्ठान नहीं किया है क्या? तुम व्यर्थ सर्प की तरह फुफकारते हुए क्रोध प्रकट करते हो, इसलिये सदा के लिये सर्प हो जाओ और तुम्हें गरुड़ से भय प्राप्त हो।

वेदशिरा बोले—हे दुर्मते! तुम्हारा भाव बड़ा ही दूषित है। तुम छोटे से द्रोह या अपराध पर भी महान् दण्ड देने के लिए उद्यत रहते हो और अपना काम बनाने के लिये कौए की तरह इस पृथ्वी पर डोलते-फिरते हो, अतः तुम भी 'कौआ' हो जाओ। उसी समय भगवान् विष्णु परस्पर शाप देते हुए दोनों ऋषियों के बीच प्रकट हो गये। वे दोनों अपने-अपने शाप से बहुत दुःखी थे। भगवान् ने अपनी वाणी द्वारा उन दोनों को सान्त्वना दी। जैसे शरीर में दोनों भुजाएँ समान हैं, उसी प्रकार तुम दोनों समान रूप से मेरे भक्त हो। मैं अपनी बात तो झूठी कर सकता हूँ; परन्तु भक्त की बात को मिथ्या करना नहीं चाहता–मेरी यह प्रतिज्ञा है।

हे वेदशिरा! सर्प की अवस्था में तुम्हारे मस्तक पर मेरे दोनों चरण अङ्कित होंगे। उस चिह्न के कारण तुम्हें गरुड़ से कदापि भय नहीं होगा। हे अश्वशिरा! अब तुम मेरी बात सुनो–सोच न करो। काम रूप में रहने पर भी तुम्हें निश्चय ही उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा। योगसिद्धियों से युक्त उच्चकोटि का त्रिकालदर्शी ज्ञान सुलभ होगा। हे नरेश्वर! यों कहकर भगवान् विष्णु जब चले गये, तब अश्वशिरा मुनि साक्षात् योगीन्द्र काकभुशुण्डी हो गये और नीलपर्वत पर रहने लगे। वे सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ को प्रदर्शित करने वाले महातेजस्वी रामभक्त हो गये। उन्होंने ही महात्मा गरुड़ को रामायण की कथा सुनायी थी।

शेष द्वारा पृथ्वी का धारण

श्रीभगवान् ने शेष से कहा इस भूमण्डल को अपने ऊपर धारण की शक्ति दूसरे किसी में नहीं है, इसलिये इस भूगोल को तुम्हीं अपने मस्तक पर धारण करो। तुम्हारा पराक्रम अनन्त है, इसीलिये तुम्हें 'अनन्त' कहा गया है। जन-कल्याण के हेतु तुम्हें यह कार्य अवश्य करना चाहिये। शेष ने कहा—हे प्रभो! पृथ्वी का भार उठाने के लिए आप कोई अवधि निश्चित कर दीजिये। जितने दिन की अवधि होगी, उतने समय तक मैं आपकी आज्ञा से भूमि का भार अपने सिर पर धारण करूँगा। श्रीभगवान् बोले—हे नागराज! तुम अपने सहस्र मुखों से प्रतिदिन पृथक्-पृथक् मेरे गुणों से स्फुरित होने वाले नूतन नामों का सब ओर उच्चारण किया करो। जब मेरे दिव्य नाम समाप्त हो जायँ, तब तुम अपने सिर से पृथ्वी का भार उतार कर सुखी हो जाना। शेष ने कहा—हे प्रभो! पृथ्वी का आधार तो मैं हो जाऊँगा, किन्तु मेरा आधार कौन होगा? बिना आधार के मैं जल के ऊपर कैसे स्थित रहूँगा। श्रीभगवान् बोले—हे मेरे मित्र! इसकी चिन्ता तुम मत करो। मैं 'कच्छप' बनकर महान् भार से युक्त तुम्हारे विशाल शरीर को धारण करूँगा। श्रीनारद जी कहते हैं—हे नरेश्वर! तब शेष ने भूमि को उठाकर भगवान् श्रीगरुडध्वज को नमस्कार किया। फिर वे पाताल से लाख योजन नीचे चल गये।

मूर्तिपूजा के विरुद्ध ग्यारह प्रश्न

गुणपूर्तिरर्चावतारे । दिव्यसूरयो बहुस्थलेषु प्रपत्तिं चार्चावतारेऽकुर्वन् ।।

आजकल के दलीलबाज लोग मूर्तिपूजा को उड़ा देने के लिये ग्यारह प्रश्न करते हैं। इसमें **पहला** प्रश्न यह है—क्या मूर्ति में ईश्वर घुस कर बैठा है जो मूर्ति में ईश्वर का पूजन करते हो? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि क्या फोटो में फोटो वाले मनुष्य घुस बैठते हैं? और क्या नोट में रुपये छिपे हुए हैं? अव्याप्त होने पर भी जैसे संसार फोटो और नोट को प्रतिकृति मानता है वैसे ही ईश्वर की प्रतिकृति मूर्ति है, इससे हम सब मूर्तिपूजा करते हैं। एक मूर्ति में ही नहीं बल्कि सब संसार में ईश्वर व्यापक है।

दूसरा प्रश्न होता है—मूर्ति तो मनुष्य की बनाई हुई है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस मनुष्य की बनाई स्याही और मनुष्य का बनाया कागज तथा मनुष्य का किया हुआ टाईप इन सबों से बना हुआ जो वेद, कुरानशरीफ, बाईबिल, जिन्दावस्था, गुरुग्रन्थ साहब ये सब जिन मनुष्यों के धर्म-ग्रन्थ हैं, उन सबकी इनमें पूज्य बुद्धि है वैसे ही मनुष्य की बनाई मूर्ति में भी मूर्ति पूजकों की पूज्य बुद्धि होती है।

तीसरा प्रश्न होता है—मूर्ति को पूजने से ईश्वर की प्रसन्नता कैसे होगी? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे शरीर के पूजने से शरीर में व्याप्त आत्मा प्रसन्न होता है। वैसे ही मूर्ति के पूजने से मूर्ति में व्याप्त नारायण भगवान् प्रसन्न होते हैं।

चौथा प्रश्न होता है—निराकार ईश्वर की मूर्ति कैसे बनेगी? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे जिसका कुछ भी आकार नहीं ऐसा जो अभाव है उसकी मूर्ति शून्य बन जाती है, वैसे ही सर्वस्वरूप जो ईश्वर है उनकी मूर्ति बन जाती है।

पांचवाँ प्रश्न होता है—मूर्ति के टूटने से ईश्वर नष्ट हो जायेगा। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे शरीर के नाश होने पर शरीर में रहने वाले जीव का नाश नहीं होता है और अन्न आदि के नाश होने पर अन्नादि में व्याप्त ईश्वर का नाश नहीं होता है वैसे ही मूर्ति के टूटने पर भी मूर्ति में व्याप्त ईश्वर का नाश नहीं होता है।

छठा प्रश्न होता है—नकली मूर्ति के पूजन से असली ईध्वर का ज्ञान कैसे होगा? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे लड़कों के नक्शे में जो नकली हिमालय, गङ्गा, समुद्र, जङ्गल आदि हैं उनके ज्ञान से असली हिमालय, गङ्गा, समुद्र, जंगल आदि का ज्ञान हो जाता है वैसे ही भक्तों को निर्मित मूर्ति के पूजन से असली ईश्वर का ज्ञान हो जाता है।

सातवाँ प्रश्न होता है—मूर्ति के पूजन करने से ईश्वर कैसे प्रसन्न हो जायेंगे? इस प्रश्न का उत्तर यह है—जिस प्रकार असंख्य पदार्थ-द्रव्य के स्वामी जिसके यहाँ किसी प्रकार की कमी नहीं है उसको केवल प्रसन्नार्थ अनेक राजा भेंट देते हैं और वह प्रसन्न होता है इसी प्रकार परिपूर्ण ईश्वर को भक्तजन सब पदार्थ अर्पण कर देते हैं।

आठवाँ प्रश्न होता है—ईश्वर तो अखण्ड है। अखण्ड की मूर्ति कैसे बनेगी? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे अखण्ड काल के सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग–ये चार स्थूल खण्ड बनाये गये इसके बाद वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष–ये माध्यमिक खण्ड बनाये गये, फिर दिन, रात, पहर, घड़ी आदि खण्ड बनाकर अखण्ड काल की भव्य मूर्ति वाली घड़ी बनती है वैसे ही ईश्वर की असंख्य

मूर्तियाँ बनती हैं और ईश्वर में कोई विकार नहीं आता है।

नौवाँ प्रश्न होता है—मूर्ति में ईश्वर की भावना कैसी? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि प्रभु सर्व-व्यापक हैं इससे वे सर्वत्र रहते हैं अत: मूर्ति में ईश्वर की भावना सच्ची है।

दशवाँ प्रश्न होता है—जो मूर्तियाँ औरंगजेब आदि दुष्टों का अनिष्ट नहीं कर सकी, वे हमारी क्या सहायता करेंगी? इस प्रश्न का उत्तर यह है—जैसे विकासवाद वाले निराकार ईश्वर का खण्डन करते हैं; परन्तु निराकार ईश्वर विकाशवादियों को मारता नहीं है तो भी निराकार माना जाता है वैसे ही यदि औरंगजेब ने मूर्ति का अपमान कर दिया और मूर्ति ने उसका अनिष्ट नहीं किया तो भी मूर्तिपूजा अवश्य करनी चाहिये।

ग्यारहवाँ प्रश्न होता है—हमने मूर्तिपूजा से किसी को भी लाभ होते नहीं देखा? इसका उत्तर है—तुम्हारा ज्ञान नेत्र फूट गया है, इससे तुमको नहीं दिखाई पड़ता है; परन्तु इतिहास साक्षी है कि मूर्तिपूजा करने से उद्धव, ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, अम्बरीष, मुचकुन्द, मार्कण्डेय आदि अनेक भक्तों का कल्याण हुआ।

नाम-महिमा

एक जङ्गल में चार चोर ऊँचे टीले पर बैठकर लूटने की घात में यात्रियों को देखा करते थे। जब कोई यात्री जङ्गल में ऊँचे-नीचे कहीं भी नदी नाले के मार्ग से जाता दिखाई देता तो एक आवाज लगाता 'नारायण'। तात्पर्य पथिक नाले में उतर गया है। तब दूसरा कहता—'वासुदेव' तात्पर्य–दो चार बाँस (लाठी) मारो। तब तीसरा कहता—'दोमोदर' तात्पर्य जो कुछ पैसे हों, उन्हें छीन लो। तब चौथा कहता—'हरि हरि'। तात्पर्य–छोड़ दो। इस प्रकार भगवन्नामों के सङ्केत से यात्रियों को लूटते रहते थे। एक बार चारो यही कह रहे थे कि उन पर बिजली गिरी और वे सब मर गये किन्तु सब-के सब नामाभास मात्र से दिव्य विमान पर बैठकर भगवद्धाम को गये।

शरणागति का रहस्य

किसी जङ्गल में एक बाघ के खदेड़ने पर एक व्याध वृक्ष पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर ऋक्ष निवास करता था। वृक्ष के समीप जाकर बाघ ने भालू से कहा—तुम इस व्याध को अपने पृक्ष पर से नीचे गिरा दो; क्योंकि यह हम लोगों का शत्रु है। भालू ने कहा—मेरे निवास स्थान पर आये हुए इस व्याध को मैं नहीं गिराऊँगा, ऐसा करने से शरणागति धर्म में महान् कलङ्क लग जायेगा। ऐसा कहकर भालू सो गया। तब बाघ ने व्याध से कहा कि मैं तुमको छोड़ दूँगा, तुम सोये हुये भालू को वृक्ष से गिरा दो। दुष्ट व्याध ने सोये हुए भालू को वृक्ष पर से ढकेल दिया, किन्तु पूर्व अभ्यास के बल से भालू वृक्ष की शाखा को पकड़ कर बच गया। नीचे नहीं गिरा। तब बाघ ने भालू से कहा—देखो कैसा दुष्ट यह व्याध है। तुम्हारे साथ इसने विश्वासघात किया है, अत: तुम इसे नीचे ठकेल दो। बाघ के इस प्रकार बार-बार कहने पर भी भालू ने व्याध को नीचे नहीं गिराया और बाघ से कहा कि मैं इस अपराधी की भी रक्षा करूँगा; क्योंकि शरणागति धर्म में अपराधियों की भी रक्षा का विधान है।

सन्त की कृपा से सेठ बने पुत्रवान्

एक सन्त-सेवी सेठ जी थे, धन-धान्य से परिपूर्ण होकर भी सन्तान बिना दु:खी रहते थे। एक बार सन्त सेवा के प्रभाव से इन्हें श्रीनारदजी का दर्शन हुआ और इन्होंने देवर्षि वर्य से सन्तान के सम्बन्ध में जिज्ञासा की। श्रीनारदजी ने भगवान् से पूछकर बताने को कहा। कुछ दिन बाद श्रीनारदजी ने पुन: सेठ जी को दर्शन दिया और कहा—भगवान् ने तो कहा है कि सात जन्म तक तुम्हें पुत्रहीन रहना है। सेठ जी यह सुनकर निराश हो गये, किन्तु एकदिन रात में लगभग दस बजे एक सन्त ने आवाज लगाई—भाई मैं भूखा हूँ। एक रोटी देगा, उसको एक बेटा, दो देने वाले को दो बेटा, तीन देने वाले को तीन आदि आदि।

सेठ जी ने प्रसन्न मन से सन्त को चार रोटियाँ दीं। परिणामस्वरूप सेठ जी चार पुत्र वाले भी हो गये। कुछ दिन के बाद श्रीनारद जी पुन: उसी मार्ग से लौटें सेठ जी ने नारद जी का स्वागत किया और पुत्रों से दण्डवत प्रणाम करवाया। नारद जी ने पूछा—ये बालक किसके हैं? सेठ जी ने समस्त वृत्तान्त बतलाया। श्रीनारद जी झुँझलाये हुये श्रीभगवान् के पास गये। उलाहना दिये कि आपने मुझसे कहा था कि कई जन्म तक उसे पुत्र का योग ही नहीं है और मैं आँखों से देख आया सेठ की गोद में विनोद करते हुए चार-चार बालक। भगवान् ने कहा—मैंने थोड़े ही उसे पुत्र दिया है। यह तो मेरे एक भक्त की कृपा से हुआ है, जिसके वचन को मैं भी मिथ्या नहीं कर सकता। श्रीनारद जी आश्चर्य-चकित हो गये। उन्हें ऐसे भक्त विशेष को देखने की इच्छा जागृत हुई। सर्वान्तर्यामी भगवान् तुरन्त ही देवर्षि के मन को जान गये और उनकी जिज्ञासा का समाधान करने के लिये पेटदर्द का बहाना किये। औषधि पूछने पर किसी भक्त का कलेजा माँगे। नारदजी चले खोजने, परन्तु निराश लौटे। राह में लेटे मस्ताने सन्त मिले। मस्ताने सन्त ने श्रीनारद जी से उनकी व्यग्रता का कारण पूछा और जब प्रभु के पेट दर्द की बात मालूम हुई तो उन्होंने तुरन्त चाकू लेकर यह कहते हुए कि भला यह शरीर और कौन से काम में आयेगा। दिल निकालने को उद्यत हो गये। भगवान् तत्काल प्रगट हो गये और बोले नारद जी! ऐसे भक्तों की बात रखनी ही पड़ती है। श्रीनारद जी को भी अपनी भूल का भान हो गया कि कलेजा तो मेरे पास भी था; परन्तु मैं नहीं दे सका, धन्य हैं ऐसे भक्त। श्रीहनुमान जी तो ऐसे भक्तों में भी शिरोमणि हैं। अत: यदि उस पुत्र संस्कारहीन सेठ को पुत्रवान् बनाये तो इसमें आश्चर्य ही क्या।

चना से शिष्य की परीक्षा

एक गुरुजी के यहाँ दो जिज्ञासु दीक्षा प्राप्त करने के निमित्त निवास करते थे। जब उपदेश श्रवण करते-करते कुछ काल बीत गया तो श्रीगुरुदेव ने अधिकार परीक्षार्थ दोनों को एक-एक मुट्ठी चना देकर एक वर्ष बाद इन्हें लेकर अपने पास आने को कहा। दोनों घर चले गये। एक ने घर जाकर चनों को डिबिया में बन्द करके रख दिया और दूसरे ने अपने उस एक मुट्ठी चने को उपजाऊ भूमि में बो दिया। फलस्वरूप वह कई गुना हो गया। एक वर्ष बीतने पर दोनों श्री गुरुजी के पास आये और अपने-अपने चने प्रस्तुत किये। श्री गुरुजी ने देखा कि डिबिया वाला चना तो रखा-रखा घुन गया था और दूसरे शिष्य के चने को कई गुना वृद्धि को प्राप्त हुआ पाया। इसकी इस क्रिया से भक्ति वृद्धि होने का लक्षण जानकर इसे ही अधिकारी समझकर मन्त्रोपदेश किया।

हनुमान जी का गरभंजन

सीताजी ने हनुमान के हाथ में वह मुद्रिका दे दी। तब हनुमान जी सीता की अज्ञा ले तथा नमस्कार करके शीघ्र ही लौट पड़े। उन्होंने समुद्र के किनारे वाले पर्वत पर चढ़कर उस पर्वत को चूर्ण कर डाला। उस समय ब्रह्मा ने विस्तारपूर्वक एक पत्र लिखकर उन्हें दिया। जिसमें यह लिखा था कि लङ्का में जाकर मारुतिनन्दन ने क्या-क्या किया। उसको लेकर ब्रह्मा की आज्ञा ले तथा उन्हें नमस्कार करके पुनः वहाँ से उड़कर आकाशमार्ग से घोर तथा महान् वानरों की तरह शब्द करते हुए जोरों से चल पड़े। उत्तर दिशा की ओर कुछ दूर आगे जाकर हनुमान नीचे उतरे और वहाँ उन्होंने एक मुनि को देखा। तब कुछ गर्व से मारुति ने कहा—

हे मुनीश्वर! मैं श्रीराम का काम करके आ रहा हूँ। यहाँ मैं पानी पीने की इच्छा से आया हूँ। मुझे कोई जलाशय बतलाइये। तब मुनि ने उन्हें तर्जनी अंगुली से जलाशय बतलाया। तदनन्तर हनुमान अंगूठी, चूड़ामणि तथा पत्र मुनि के पास रखकर उस उत्तम तालाब की ओर जल पीने चले गये। इतने में किसी बन्दर ने आकर राम की मुद्रिका को मुनि के पास रक्खे कमण्डलु में डाल दिया। उधर से हनुमान भी आ पहुँचे। चूड़ामणि तथा पत्र को लेकर उन्होंने मुनि से पूछा कि मुद्रिका कहाँ गई। मुनि ने भौंहों के सङ्केत से कमण्डलु दिखा दिया। जब हनुमान ने कमण्डलु में देखा तो श्रीराम की हजारों मुद्रिकाएँ दिखाई दी। तब हनुमान ने आश्चर्यचकित होकर मुनि से पूछा कि इतनी अंगूठियाँ कहाँ से आई, सो कहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! आप यह भी कहिये कि इनमें से मेरी कौन-सी मुद्रिका है? मुनि ने उत्तर दिया जब-जब श्रीराम की आज्ञा से हनुमान ने लङ्का जाकर सीता का पता लगाया है और अंगूठियाँ मेरे सामने रक्खी हैं तब-तब बन्दरों ने उन्हें इस कमण्डलु में गिरा दी है। वे ही ये सब हैं। इनमें से तुम अपनी अंगूठी खोज लो। मुनि के इस वाक्य को सुनकर हनुमान का गर्व खर्व हो गया। तब उन्होंने मुनि से कहा—

हे मुनीश्वर! यहाँ कितने राम आये हैं? मुनि ने कहा कमण्डलु से अंगूठियाँ निकाल कर गिन लो। अब हनुमान जी कण्डलु से अञ्जली भर-भरकर बारम्बार अंगूठियाँ बाहर निकालने लगे। पर उनका अन्त नहीं हुआ। तब फिर से उन्हें कमण्डलु में भर दिया और हनुमान मुनि को नमस्कार कर क्षणभर के लिए मन में विचार करने लगे। ओ हो, हमसे पूर्व मेरे जैसे सैकड़ों हनुमान जाकर सीता की शोध ले आये हैं तो मेरी कौन गिनती है। यह निश्चय करके वीर मारुति घमण्ड को त्यागकर दक्षिणमार्ग से जहाँ अङ्गदादि बैठे थे, वहाँ गये। उपवास की दशा में बैठे हुए वे सब वानर हनुमान को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। वे सब उनको बार-बार हृदय से लगाने लगे और उनके मुख से यह सुनकर कि मैं सीता को अशोकवन में देख आया हूँ। सब-के सब तुरन्त राम की ओर चल पड़े ।

राम के पास आकर नमस्कार करके सामने खड़े हो गये। तब हनुमान ने सहर्ष ब्रह्मा का दिया हुआ पत्र राम को अर्पण किया और चूड़ामणि देकर कौवे का वृत्तान्त कह सुनाया यह सुनकर राम लङ्का में हनुमान का किया हुआ समस्त कार्य जान गये। ब्रह्मा के पत्र से राम अतिशय सन्तुष्ट हुए। तदनन्तर राम हनुमान को आलिङ्गन करके बोले—हे मारुते! तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है। उस उपकार का प्रत्युपकार करने के लिये मुझे कुछ नहीं दीखता। सचमुच तुम संसार में धन्य हो। इस संसार में

साक्षात् परमात्मा का (मेरा) परिरम्भ (आलिङ्गन) दुर्लभ है, वह भी तुमको प्राप्त हुआ। इस कारण हे हरिपुङ्गव तुम मेरे प्रिय भक्त हो। जिस विष्णु के दोनों चरणकमलों का तुलसी पत्र तथा जल आदि से पूजन करके मनुष्यमात्र विष्णु के अनुपम पद को प्राप्त करता है। उन्हीं साक्षात् राम के द्वारा आलिङ्गित होकर वायुपुत्र हनुमान यदि महान् पुण्यशाली हो जायँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। बाद में डर के मारे काँपते हुए मारुति ने राम से अपना गर्वरूप अपराध, मुद्रिका का वृत्तान्त तथा मुनि का वचन कह सुनाया। यह सुना तो रामचन्द्र ने हँसकर कहा कि यह कौतुक मैंने ही मार्ग में मुनिरूप धारण करके दिखलाया था। यह काम मैंने तुम्हारे गर्व को छुड़ाने के लिये ही किया था। यह देखो, जिस मुद्रिका को तुम ले आये थे वह तो मेरे हाथ की कनिष्ठिका अंगुली में वर्तमान है। राम के हाथ में उनकी अंगूठी देखी तो गर्व छोड़कर हनुमान ने नमस्कार किया और उन्हें साक्षात् विष्णु माना।

वालि की माला

सुग्रीव को विश्वास दिलाने के लिए राम ने अपने पाँव के अंगूठे से दुन्दुभी के शरीर की हड्डी के ढेर को दूर फेंक दिया। वह दस योजन की दूरी पर जा गिरा। गोल आकार में सर्प के शरीर पर जमे हुए सात ताल वृक्षों को देखा तो राम ने पृथ्वी पर शेष के अंश से स्थित लक्ष्मण के पाँव को अपने पाँव के अंगूठे से दबाकर उस सर्प को सीधा किया और बाण से उन सातों वृक्षों को एक ही बार में काट डाला। ऐसा करके उन्होंने सुग्रीव को विश्वास दिलाया कि राम मेरी सहायता करने में और वालि को मारने में समर्थ हैं। एक समय की बात है वालि ने गुफा में ताल के फल रक्खे थे। उनमें से कोई सात फल उठा ले गया। वालि ने देखा तो उसे वहाँ फल की जगह सर्प दिखायी दिया। तब वालि ने सर्प को शाप दिया कि जा, तेरे ऊपर सात तालवृक्ष उगेंगे। तब सर्प ने भी कहा कि जो पुरुष उन वृक्षों को काटेगा, वही तुझे मारेगा, इसमें सन्देह नहीं है। उसी सामर्थ्य को आज राम ने देखकर सुग्रीव को विश्वास हो गया। तब प्रसन्न होकर सुग्रीव ने कहा—

पूर्वकाल में इन्द्र ने वालि को एक माला दी थी। जिसे देखकर शत्रुगण युद्ध में बलहीन हो जाते हैं। वह माला पहले कठोर तप करने पर कश्यप को शिवजी से मिली थी। कश्यप ने उसे लेकर अपने पुत्र इन्द्र को दी और इन्द्र ने वालि को अर्पण की। प्रीतिपूर्वक अर्पित की हुई उस माला को वालि सदा गले में पहने रहता है। हे राम! उसको देखने के साथ ही आप भी बहलीन हो जायेंगे अत एव इस विषय में कोई उपाय सोचिये जिससे आपकी विजय हो। सुग्रीव के इस वचन को सुनकर राम ने, जिसको बाण के द्वारा सात तालवृक्षों को काटकर शाप से मुक्त कर दिया था, उस साँप से कहा कि तुम मेरे कथनानुसार किष्किन्धा में जाकर रात्रि के समय जब कि वालि सोता रहे, तब उसके गले में से उस सुन्दर माला को चुरा लाओ। 'तथास्तु' कहकर वह साँप राम की आज्ञा के अनुसार किष्किन्धा नगरी में गया और पलङ्गपर से उस माला को चुराकर इन्द्र को दे आया। तदनन्तर राम की आज्ञा से सुग्रीव ने वालि के पास जाकर उसको युद्ध के लिये ललकारा और युद्ध किया।

कपिध्वज अर्जुन

एक दिन कृष्णजी को छोड़कर अकेले अर्जुन वन में शिकार खेलने गये और घूमते-घूमते दक्षिण दिशा की ओर चले गये। उस समय वे सारथी के स्थान पर बैठ घोड़ों को हाँकते हुए जा रहे थे। इस तरह वन में घूम-घूमकर दो पहर के समय तक उन्होंने बहुत से वनजन्तुओं को मारा। इसके बाद स्नान करने की तैयारियाँ करने लगे। स्नान करने के लिए वे सेतुबन्ध रामेश्वर के धनुषकोटि तीर्थ पर गये, वहाँ स्नान किया और कुछ गर्व से समुद्र के तट पर घूमने लगे। तभी उन्होंने एक पर्वत के ऊपर साधारण वानर का स्वरूप धारण किये हुए हनुमान जी को बैठे देखा। उस समय हनुमान जी राम नाम जप रहे थे। पीले रङ्ग के रोएँ उनके शरीर पर बड़े अच्छे लग रहे थे। उन्हें देखकर अर्जुन ने पूछा—

हे वानर! तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? अर्जुन का प्रश्न सुना तो हँसकर हनुमान जी बोले कि जिनकी प्रताप से रामचन्द्र जी ने सौ योजन विस्तृत सेतु बनाया था, मैं वही वायुपुत्र हनुमान हूँ। इस तरह गर्व भरे वचन सुनकर अर्जुन ने भी गर्व से हँसकर कहा कि राम ने व्यर्थ इतना कष्ट उठाया। उन्होंने बाणों का सेतु बनाकर क्यों नहीं अपना काम चला लिया। अर्जुन की बात सुनकर हनुमान जी ने कहा—हम जैसे बड़े-बड़े बानरों के बोझ से वह बाण का सेतु डूब जाता। यही सोचकर उन्होंने ऐसा नहीं किया। अर्जुन ने कहा—हे वानरसत्तम! यदि वानरों के बोझ से सेतु डूब जाने का भय हो तो उस धनुर्धारी को धनुर्विद्या की ही क्या खूबी रही। अभी इसी समय मैं अपने कौशल से बाणों का सेतु बनाये देता हूँ, तुम उसके ऊपर आनन्द से नाचो कूदो। इस प्रकार मेरी धनुर्विद्या का नमूना भी देख लो। अर्जुन की ऐसी बात सुनकर हनुमान मुसकराते हुए कहने लगे कि यदि मेरे पैर के अंगूठे के बोझ से ही आपका बनाया सेतु डूब जाय तो क्या करिएगा?

हनुमान की बात सुनकर अर्जुन ने कहा कि यदि तुम्हारे भार से सेतु डूब जायेगा तो मैं चिता लगाकर उसकी आग में जल मरुँगा। अच्छा अब तुम कोई बाजी लगाओ। अर्जुन की बात सुनकर हनुमान जी कहने लगे कि यदि मैं अपने अंगूठे के ही भार से तुम्हारे बनाए सेतु को न डूबा सकूँगा तो तुम्हारे रथ की ध्वजा के पास बैठकर जीवन भर तुम्हारी सहायता करूँगा। 'अच्छा, यही सही' ऐसा कहकर अर्जुन ने अपने धनुष का टंकार किया और अपने बाणों के समूह से बहुत थोड़े समय में एक मजबूत सेतु बनाकर तैयार कर दिया। उस सेतु का विस्तार सौ योजन था और वह सागर के ऊपर ही तैर रहा था। उस सेतु को देखकर हनुमान जी ने उनके सामने ही अपने अंगुष्ठ के भार से उसे डूबा दिया। उस समय गन्धवों के साथ-साथ देवताओं ने हनुमान जी पर फूलों की वर्षा की।

हनुमान जी के इस कर्म से खिन्न होकर अर्जुन ने समुद्र के तट पर ही चिता तैयार की और हनुमान जी के रोकने पर भी वे उसमें कूदने को उद्यत हो गये। उसी समय ब्रह्मचारी का रूप धारण करके कृष्णचन्द्र जी वहाँ आ गये और अर्जुन से चिता में कूदने का कारण पूछा। अर्जुन के मुख से ही सब बातें मालूम करके, उन्होंने कहा कि तुम लोगों ने उस समय जो बाजी लगायी थी, वह नि:सार थी; क्योंकि उस समय तुम्हारी बातों का कोई साक्षी नहीं था। साक्षी के बिना सत्य-झूठ का कोई ठिकाना नहीं रहता। इस समय मैं तुम्हारे साक्षी के रूप में

विद्यमान हूँ। अब तुमलोग फिर पहले की तरह कार्य करो, तो मैं तुम्हारे कर्मों की देखकर विजय-परायज का निर्णय करूँगा। ब्रह्मचारी की बात सुनकर दोनों ने कहा—

ठीक है और अर्जुन ने सेतु की रचना की। अबकी बार सेतु के नीचे कृष्णचन्द्र जी ने अपना सुदर्शन चक्र लगा दिया। सेतु तैयार होने पर हनुमान जी अपने अंगूठे के भार से उसे डुबाने लगे। जब हनुमान जी ने अबकी बार सेतु को मजबूत देखा तो पैरों, घुटनों तथा हाथों के बल से उसे दबाया, किन्तु वह जौ भर भी नहीं डूबा। तब चुपचाप हनुमान जी ने सोचा कि पहले तो मैंने अंगूठे के ही बोझ से इह सेतु को डुबा दिया था तो फिर यह हाथ-पैर आदि पूरे बोझ से भी क्यों नहीं डूबता। इसमें ये ब्रह्मचारी जी ही कारण हैं। ये ब्राह्मण नहीं, बल्कि यह साक्षात् कृष्णचन्द्र जी हैं और मेरे गर्व का परिहार करने के लिए ही इन्होंने ऐसा किया है। वास्तव में है भी ऐसा ही। भला, इन भगवान् के सामने हम जैसे वानरों की सामर्थ्य ही क्या है। ऐसा निश्चय करके हनुमान जी ने अर्जुन से कहा कि आपने इन ब्रह्मचारी जी की सहायता से हमें परास्त कर दिया। ये कोई वटु नहीं साक्षात् भगवान् हैं। इन्होंने सेतु के नीचे अपना चक्र लगा दिया है।

हे अर्जुन! हमें यह बात मालूम हो गयी है कि ये आपकी सहायता के लिये ही यहाँ आये हैं। यही रूप धारण करके त्रेता में राम ने हमें वरदान दिया था कि द्वापर के अन्त में मैं तुम्हें श्रीकृष्ण रूप से दर्शन दूँगा। आपके सेतु के बहाने इन्होंने अपना वरदान भी आज पूरा कर दिया। हनुमान जी अर्जुन से ऐसा कह ही रहे थे कि इतने में भगवान् अपने वटु रूप को त्यागकर कृष्ण बन गये। उस समय वे पीले वस्त्र पहने थे और नवीन नीरद के समान उनका श्याम शरीर था। उन कृष्णचन्द्र जी का दर्शन करते ही हनुमान जी के रोंगटे खड़े हो गये और उन्होंने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। जब कृष्ण ने उठाकर हनुमान जी को अपने हृदय से लगाया, तब हनुमान जी ने अपने को कृतकृत्य मान लिया। कृष्ण के आज्ञानुसार चक्र निकलकर अपने स्थान को चला गया और अर्जुन का बनाया सेतु भी समुद्र की तरङ्गों में विलुप्त हो गया। इस तरह अर्जुन का भी गर्व नष्ट हो गया और उन्होंने समझा कि कृष्ण ने मुझे जीवित रख लिया। कुछ देर में श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से कहा कि तुमने राम के साथ स्पर्धा की थी। इसीलिए हनुमान जी ने तुम्हारी धनुर्विद्या को व्यर्थ कर दिया था। इसी प्रकार हे पवनसुत! तुमने भी राम से स्पर्धा की थी। इसी कारण वे अर्जुन से परास्त हुए। तुम्हारा गर्व नष्ट हो गया। अब आनन्द के साथ मेरा भजन करो। ऐसा कह और हनुमान जी से पूछकर कृष्ण अर्जुन के साथ हस्तिनापुर चले गये। हे शिष्य! इसी कारण अर्जुन कविध्वज कहे जाते हैं।

नल को ऋषि का श्राप

सागर ने विनयपूर्वक रघुश्रेष्ठ रामजी से कहा—हे राघव! आप मेरे ऊपर नल के द्वारा पत्थरों का पुल बँधवाएँ। नल विश्वकर्मा का पुत्र है। उसने जल पर पत्थर तैराने का वर प्राप्त किया है। एक बार इसने एक ब्राह्मण का शालिग्राम उठाकर गङ्गा नदी के जल में फेंक दिया था। तब उसने शाप दिया कि जा, तेरा फेंका पत्थर पानी में तैरेगा। वह शाप ही अब वर माना जायेगा। इतना कह तथा राम को नमस्कार करके समुद्र अदृश्य हो गया।

आनन्द रामायण के अनुसार सरयू की उत्पत्ति का वर्णन

हे महाभाग! सरयू नदी का इतना श्रेष्ठ माहात्म्य क्यों है और यह कहाँ से धरातल पर आयी है? इन सब बातों का विस्तार से वर्णन करिए।

तब मुद्गल ने कहा—हे प्रभो! आप अपना ही चरित्र यदि मेरे मुख से सुनना चाहते हैं तो हे रघुत्तम! मैं आपको सुनाता हूँ, सुनिए। पहले कभी शङ्खासुर नाम का एक बड़ा भारी राक्षस हुआ था। वह सब वेदों को हरण कर ले गया। उसने ले जाकर उन्हें समुद्र में डुबो दिया तथा स्वयं भी उसी महासागर में छिप गया। उसको मारने के लिए आपने बड़े भारी मत्स्य का रूप धारण किया और उसको मारकर वेदों की रक्षा की। वेदों को लाकर आपने ब्रह्मा को दिया और प्रसन्नतापूर्वक पुन: आपने अपना पूर्वरूप धारण कर लिया। उस समय आपके नेत्रों से आनन्दाश्रु की बूँदें टपक पड़ी। हिमालय पर गिरी हुई साक्षात् नारायण के उन हर्षाश्रु की बूँदों ने एक पवित्र तथा निर्मल जलवाली नदी का रूप धारण कर लिया। आगे चलकर वे कासार और कासार से मानसरोवर के रूप में परिणत हो गयीं।

उसी समय आपके पूर्वज महात्मा वैवस्वत मनु ने यज्ञ करने की इच्छा करके अपने गुरु से कहा। इस अयोध्यापुरी के अनादि काल से स्थित रहने पर भी मैंने अपने निवास के लिए इसकी कुछ विशेषता-पूर्वक रचना करवायी है। इस कारण यदि आप कहें तो मैं इस नगरी में यज्ञ करूँ। तब गुरु ने कहा कि देखिए, न तो यहाँ कोई पवित्र तीर्थ है और न कोई बड़ी नदी ही है। इसलिए यदि आपकी यहीं यज्ञ करने की इच्छा है तो हे नृपतियों में श्रेष्ठ नृप! मानसरोवर से सुन्दर तथा पापों को नष्ट करने वाली एक नदी को यहाँ ले आइए। गुरु के इस वचन को सुनकर महान् राजा वैवस्वतमनु ने बड़े भारी धनुष को चढ़ा तथा टंकार करके बाण चलाया। वह बाण मानसरोवर को भेदकर उसमें से उस नदी के आगे-आगे चलकर रास्ता दिखलाते हुए की तरह अयोध्या ले आया। बाण के मार्ग का अनुसरण करती हुई वह नदी अयोध्या आयी तथा वहाँ से आगे जाकर पूर्वी महासागर में मिल गयी।

शर के द्वारा लायी जाने से उसको 'शरयू' नदी कहने लगे। अथवा सरोवर से निकल कर आने के कारण उसका 'सरयू' नाम पड़ा, कुछ लोगों का ऐसा कथन है। इसके बाद राजा भगीरथ कपिल मुनि के क्रोधाग्नि से जलाये गये अपने पूर्वज सगर-पुत्रों को स्वर्ग भेजने की इच्छा से आपके चरणारविन्द से प्रादुर्भूत भागीरथी गङ्गा को ले आये। बाद में शङ्करजी को तप से प्रसन्न करके उस नदी को सरयू से ला मिलाया। शङ्कर भगवान् के वरदान से गङ्गा की बड़ी भारी प्रसिद्धि हुई तथा समुद्र तक उसको लोग गङ्गा कहने लगे। हे प्रभो! आपके चरणकमलों से निकली हुई गङ्गा समस्त विश्व को पवित्र करने वाली और आपके नेत्रजल से उत्पन्न होकर यह सरयू भी लोगों को पावन करने लगी।

आनीता सा शरेणैव शरयूश्चेति कथ्यते।
सरोवरात्समुद्भुता सरयूश्चेति केचन।।८८।।
तव पादसमुद्भूता या विश्वं पाति जाह्नवी।
इयं तु नेत्रसम्भूता किमद्याग्रे वदाम्यहम्।।९२।।

कौसल्या के साथ राजा दशरथ का विवाह

अयोध्या के पास ही कोसलदेश की कोसलपुरी में कोसल नाम का बड़ा पुण्यात्मा राजा राज्य करता था। उसकी विवाह के योग्य एक सुन्दरी कौसल्या नामकी पुत्री थी। उसका उसके पिता कोसल ने दशरथ के साथ विवाह निश्चित किया। बाद में आनन्द के साथ विवाह के दिन का निश्चय करके उन्होंने लग्न के निमित्त राजा दशरथ को बुलाने के लिए दूतों को भेजा। उस समय राजा दशरथ सरयू नदी के बीच नौका में बैठकर इष्टमित्रों तथा मन्त्रियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहे थे। रात्रि का समय था, चारों ओर सैनिक खड़े थे, चारणगण स्तुति कर रहे थे और रत्नों के दीपक के प्रकाश से समस्त नाव जगमगा रही थी। वीराङ्गनायें नाना प्रकार के नाच-गान कर रही थीं। उसी समय लङ्का के राजा रावण ने ब्रह्मा से पूछा—

हे ब्रह्मन्! मेरा किससे मरण होगा? यह आप स्पष्ट कहिये? रावण का वचन सुनकर ब्रह्मा ने कहा कि दशरथ की स्त्री कौसल्या से साक्षात् जनार्दन भगवान् राम आदि चार पुत्रों के रूप में उत्पन्न होंगे। उनमें से राम तुमको मारेंगे। राजा दशरथ के लग्न का आज से पाँचवाँ दिन कोसलराज ने ब्राह्मणों से पूछकर निश्चित किया है। ब्रह्मा का यह वचन सुना तो रावण बहुत से राक्षसों को साथ लेकर शीघ्र अयोध्या नगरी को चल पड़ा। वहाँ जा और घोर युद्ध करके उसने नौका में बैठे राजा दशरथ को पराजित किया और पाद-प्रहार से नाव को तोड़कर सरयू के जल में डुबो दिया।

उस समय और सब तो जल में डूबकर मर गये; परन्तु राजा दशरथ तथा सुमन्त्र नाम का मन्त्री देवेच्छा से नाव के टुकड़ों पर बैठकर धीरे-धीरे जल प्रवाह के सहारे गङ्गानदी में जा पहुँचे। वहाँ से बहते हुए वे दोनों समुद्र में जा मिले। उधर रावण अयोध्या से चलकर कोसल नगरी में जा पहुँचा और भयानक युद्ध करके राजा कोसल को जीत लिया। तदनन्तर कौसल्या का हरण करके वह आनन्द के साथ आकाश मार्ग से लङ्का को चला। रास्ते में क्षारसमुद्र में रहती हुई तिमिङ्गिल मछली को देखकर उसने सोचा कि सब देवता मेरे शत्रु हैं। कहीं रूप बदलकर वे लङ्का से कौसल्या को चुरा न ले जायँ। इसलिए इसको यहीं इस तिमिङ्गिल को धरोहर रूप में सौंप दूँ तो ठीक होगा। ऐसा सोचकर उसने कौसल्या को पिटारी में बन्द करके तिमिङ्गिल मछली को सौंप दिया और स्वयं आनन्द के साथ लङ्का चला गया। वह मछली उस पिटारी को मुख में लेकर सुखपूर्वक समुद्र में घूमने लगी। सहसा सामने अपने शत्रु को देखकर उसने शत्रु के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। तदनुसार पिटारी को एक टापू में रखकर वह शत्रु से युद्ध करने लगी। उसी समय वह नाव का टुकड़ा भी उसी टापू के किनारे आ लगा, जिसको पकड़ कर दशरथ और सुमन्त्र ने सरयू में डूबने से अपनी जान बचायी थी। जब राजा दशरथ तथा सुमन्त्र उसी द्वीप में उतरे, तब वहाँ उनकी दृष्टि उस पिटारी पर पड़ी। खोलकर देखने पर उसमें कौसल्या को देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। बाद में एक-दूसरे से सब बातों को जानकर प्रसन्न हुए और अच्छे मुहूर्त्त में वहीं पर राजा दशरथ ने प्रसन्नतापूर्वक कौसल्या के साथ गान्धर्व विवाह कर लिया।

तत्पश्चात् राजा दशरथ, कौसल्या तथा मन्त्रियों में श्रेष्ठ मन्त्री सुमन्त्र ये तीनों पुन: पिटारी में घुस गये और ढक्कन बन्द कर लिया। मछली ने भी शत्रु को जीतकर उस सन्दूक को फिर अपने मुख में

रख लिया। उधर लङ्का में रावण सुखपूर्वक सभा के बीच में बैठा और ब्रह्मा को बुलाकर हँसते हुए बोला—हे ब्रह्मन्! मैंने आपके वचन को भी झुठा कर डाला। दशरथ को जल में डुबोकर कौसल्या को छुपा दिया। भरी सभा में रावण के इस वचन को सुनकर ब्रह्मा ने जोर से स्पष्ट शब्दों में **'ॐ पुण्याहम्'** ऐसा कहा। यह सुनकर रावण ने पूछा कि यह आपने क्या कहा? ब्रह्माजी बोले—

राजा दशरथ का विवाह हो गया। रावण ब्रह्मा के वचन को असत्य प्रमाणित करने के लिए दूतों द्वारा मछली से पेटी मँगवायी और ज्यों ही खोलकर ब्रह्माजी को दिखलाना चाहा त्यों ही उसमें एक साथ दशरथ-कौसल्या को देखकर पहले तो बड़ा चकित हुआ। फिर क्रुद्ध होकर उन्हें मारने के लिए उसने तलवार निकाल ली। तब ब्रह्मा ने रावण को रोककर कहा—हे दशवदन रावण! यह क्या कर रहे हो? इस समय ऐसा साहस मत करो। देख, तुने केवल कौसल्या को ही इसमें रक्खा था। किन्तु ये एक से तीन हो गये। वैसे ही इन तीनों से करोड़ों हो जायेंगे। राम भी आज ही जन्म ले लेंगे और तू मारा जायेगा। आयु शेष रहते क्यों व्यर्थ मरना चाहता है। इसलिए तू ऐसा साहस त्याग दे। जो होनी होगी सो आगे होगी। अभी तुम कुछ मत करो और इन तीनों को दूतों द्वारा इनके स्थान को भेजवा कर सुखी हो। मेरी वाणी कभी झूठी नहीं होगी। इस बात का निश्चय रख। कर्म की गति बड़ी गहन होती है। कर्म के अनुसार जो होने वाला होता है, सो होकर ही रहता है। इस घटना को देखकर रावण कुछ डर गया और ब्रह्माजी की बात को सच्ची मानकर वह पिटारी अपने दूतों द्वारा शीघ्र अयोध्या भेज दी। राजा दशरथ आदि को सकुशल आया देखकर अयोध्यावासियों तथा कोसलदेश के राजा आदि को बड़ी प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी हुआ। बाद में कोसलाधिपति ने बड़े समारोह के साथ फिर से विवाह करके अपनी कमनीय कन्या कौसल्या तथा अपना सम्पूर्ण राज्य अपने दामाद राजा दशरथ को दहेज रूप में दे दिया। तब से कोसल देश के राजा भी सूर्यवंशीय कहलाने लगे।

●

ब्रह्म का लक्षण

यद्यपि वेदान्त शास्त्र में जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार, ये तीन ही परब्रह्म का असाधारण कार्य अथवा लक्षण बताये गये हैं। यथा तैत्तिरीय उपनिषद् ने गाया—**'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यामिसंविशन्ति, तद्ब्रह्म'**। एतदनुसार ब्रह्मसूत्र भी बनाया गया–**'जन्माद्यस्य यतः'**; परन्तु हमारे आचार्य इतने से तृप्त नहीं होते। उनका मन्तव्य है कि मोक्ष देना ही श्रीभगवान् का मुख्य कार्य है, सृष्टि स्थिति इत्यादि तो मोक्षदान के पूर्वाङ्ग हैं। यथा श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी ने स्तोत्ररत्न में अनुगृहीत किया—**'त्वदाश्रितानां जगदुद्भवस्थिति प्रणाशसंसारविमोचनादयः'** इत्यादि। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने भी श्रीभाष्य के मङ्गल श्लोक में, **'अखिलभुवनजन्मस्थेमभङ्गादिलीले'** इस प्रथमपाद में, आदिशब्द के रहते हुए भी, दूसरे पाद में **'विनतविविधभूतव्रातरक्षैकदीक्षे'** कहकर स्पष्ट बता दिया कि मोक्षप्रदान ही भगवान् का मुख्य कार्य है।

●

राजधर्म

(अनन्तश्री विभूषित स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज के प्रवचन से उद्धृत)

धर्म एक ऐसा शब्द है जो हर स्थान, व्यक्ति, कार्य, समय आदि के साथ संलग्न हो जाता है। यथा–तीर्थ स्थान, विद्या स्थान, व्यवसाय स्थान, बालक, युवा, बृद्ध आदि। राजधर्म का भाव राजा का धर्म अथवा राजकीय धर्म से है। आज रामराज्य की बातें तो सभी करते हैं; परन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम राजा राम के धर्म की बातें कोई नहीं करना चाहता। गोस्वामी जी ने कहा है—**दैहिक दैवीक भौतिक तापा, रामराज्य काहहु नहीं व्यापा**। भाव यह है कि भगवान् श्रीराम के राज्य में प्रजा को त्रिविध दु:खों का सन्ताप नहीं था। इसका कारण क्या है। क्या भगवान् श्रीराम ने अपने अलौकिक प्रभुत्व के द्वारा सारी प्रजा को सुखी रखते थे अथवा राजधर्म की भी कुछ विशिष्टता थी। यह सुनिश्चित है कि भगवान् का अवतार धर्म हित में होता है। भगवान् का हर कार्य लोकोपदेश हेतु सम्पन्न किया जाता है, अत: अपने राजकीय व्यवस्था में कौन-सी व्यवस्था उन्होंने किया था कि आज सभी लोग रामराज्य की बातें करते हैं।

वाल्मीकि जी ने भरत-राम संवाद में इसका सङ्केत किया है। श्रीराम के वनगमन करने के उपरान्त जब भरत जी अपने मामा के घर से अयोध्या पधारे और सारी घटनाएँ उन्हें मालूम हुई तब वे अत्यन्त दु:खित होकर राज्य ग्रहण करने से इनकार कर दिया। तदनन्तर भगवान् श्रीराम को वन से अयोध्या वापस लाने हेतु वन गए। वन में जब दोनों भाईयों की भेंट होती है, तब भगवान् श्रीराम ने लोकोपदेश हेतु राज्य धर्म का भरत जी को इस प्रकार उपदेश किया है—

कच्चिद् विनयसम्पन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः ।
अनसूयुरनुद्रष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः ।।
कच्चिदग्निषु ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानृजुः ।
हुतं च होष्यमाणं च काले वेदयते सदा ।।
कच्चिद् देवान् पितॄन् भृत्यान् गुरून् पितृसमानपि ।
वृद्धांश्च तात वैद्यांश्च ब्राह्मणांश्चाभिमन्यसे ।।
इष्वस्त्रवरसम्पन्नमर्थशास्त्रविशारदम् ।
सुधन्वानमुपाध्यायं कच्चिद् त्वं तात मन्यसे ।।
कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः ।
कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः ।।

जो उत्तम कुल में उत्पन्न, विनयसम्पन्न, बहुश्रुत, किसी के दोष न देखने वाले तथा शास्त्रोक्त धर्मों पर निरन्तर दृष्टि रखने वाले हैं, उन पुरोहित जी का तुमने पूर्णत: सत्कार किया है? हवनविधि के ज्ञाता, बुद्धिमान् और सरल स्वभाव वाले जिन ब्राह्मण देवताओं को तुमने अग्निहोत्र कार्य के लिये नियुक्त किया है, वे सदा ठीक समय पर आकर क्या तुम्हें यह सूचित करते हैं कि इस मसय अग्नि में आहुति दे दी गयी और अब अमुक समय में हवन करना है? क्या तुम देवताओं, पितरों, भृत्यों, गुरुजनों, पिता के समान आदरणीय वृद्धों और ब्राह्मणों का सम्मान करते हो? जो मन्त्रसहित श्रेष्ठ बाणों के प्रयोग तथा मन्त्ररहित उत्तम अस्त्रों के ज्ञान से सम्पन्न और अर्थशास्त्र (राजनीति) के अच्छे पण्डित हैं, उन आचार्य सुधन्वा का क्या तुम समादर करते हो? क्या तुमने अपने ही समान शूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन तथा बाहरी चेष्टाओं से ही मन की बात समझ लेने वाले सुयोग्य व्यक्तियों को ही मन्त्री बनाया है?

मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव ।
सुसंवृतो मन्त्रिधुरैरमात्यैः शास्त्रकोविदैः ।।
कच्चिन्निद्रावशं नैषि कच्चित् कालेऽवबुध्यसे ।
कच्चिच्चापररात्रेषु चिन्तयस्यर्थनैपुणम् ।।

कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह ।
कच्चित् ते मन्त्रितो मन्त्रो राष्ट्रं न परिधावति ।।
कच्चिदर्थं विनिश्चित्य लघुमूलं महोदयम् ।
क्षिप्रमारभसे कर्म न दीर्घयसि राघव ।।
कच्चिन्नु सुकृतान्येव कृतरूपाणि वा पुनः ।
विदुस्ते सर्वकार्याणि न कर्तव्यानि पार्थिवाः ।।

अच्छी मन्त्रणा ही राजाओं की विजय का मूल कारण है। वह भी तभी सफल होती है, जब नीति-शास्त्र निपुण मन्त्रि शिरोमणि अमात्य उसे सर्वथा गुप्त रखें। तुम असमय में ही निन्द्रा के वशीभूत तो नहीं होते? समय पर जाग जाते हो न? रात के पिछले पहर में अर्थ सिद्धि के उपाय पर विचार करते हो न? (कोई भी गुप्त मन्त्रणा दो से चार कानों तक ही गुप्त रहती है; छः कानों में जाते ही वह फूट जाती है, अतः मैं पूछता हूँ—) तुम किसी गूढ़ विषय पर अकेले ही तो विचार नहीं करते? अथवा बहुत लोगों के साथ बैठकर तो मन्त्रणा नहीं करते? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारी निश्चित की हुई गुप्त मन्त्रणा फूटकर शत्रु के राज्य तक फैल जाती हो? जिसका साधन बहुत छोटा और फल बहुत बड़ा हो, ऐसे कार्य का निश्चय करने के बाद तुम उसे शीघ्र प्रारम्भ कर देते हो न? उसमें विलम्ब तो नहीं करते? तुम्हारे सब कार्य पूर्ण हो जाने पर अथवा पूरे होने के समीप पहुँचने पर ही दूसरे राजाओं को ज्ञात होते हैं न? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारे भावी कार्यक्रम को वे पहले ही जान लेते हों?

कच्चिन्न तर्कैर्युक्त्या वा ये चाप्यपरिकीर्तिताः ।
त्वया वा तव वामात्यैर्बुध्यते तात मन्त्रितम् ।।
कच्चित् सहस्रैर्मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम् ।
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसं महत् ।।
सहस्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः ।
अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता ।।
एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः ।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ।।
कच्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः ।
जघन्याश्च जघन्येषु भृत्यास्ते तात योजिताः ।।

तुम्हारे निश्चित किये हुए विचारों को तुम्हारे या मन्त्रियों के प्रकट न करने पर भी दूसरे लोग तर्क और युक्तियों के द्वारा जान तो नहीं लेते हैं? (तथा तुमको और तुम्हारे अमात्यों को दूसरों के गुप्त विचारों का पता लगता रहता है न?) क्या तुम सहस्त्रों मूर्खों के बदले एक पण्डित को ही अपने पास रखने की इच्छा रखते हो? क्योंकि विद्वान् पुरुष ही अर्थसङ्कट के समय महान् कल्याण कर सकता है। यदि राजा हजार या दस हजार मूर्खों को अपने पास रख ले तो भी उनसे अवसर पर कोई अच्छी सहायता नहीं मिलती। यदि एक मन्त्री भी मेधावी, शूर-वीर, चतुर एवं नीतिज्ञ हो तो वह राजा या राजकुमार को बहुत बड़ी सम्पत्ति की प्राप्ति करा सकता है। तुमने प्रधान व्यक्तियों को प्रधान, मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को मध्यम और छोटी श्रेणी के लोगों को छोटे ही कामों में नियुक्त किया है न?

अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहाञ्शुचीन् ।
श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठेषु कच्चित् त्वं नियोजयसि कर्मसु ।।
कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्वेजिताः प्रजाः ।
राष्ट्रे तवावजानन्ति मन्त्रिणः कैकयीसुत ।।
कच्चित् त्वां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा ।
उग्रप्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः ।।
उपायकुशलं वैद्यं भृत्यसंदूषणे रतम् ।
शूरमैश्वर्यकामं च यो हन्ति न स हन्यते ।।
कच्चिद् धृष्टश्च शूरश्च धृतिमान् मतिमाञ्छुचिः ।
कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः ।।

जो घूस न लेते हो अथवा निश्छल हों, बाप-दादों के समय से ही काम करते आ रहे हों तथा बाहर-भीतर से पवित्र एवं श्रेष्ठ हों, ऐसे अमात्यों

को तुम उत्तम कार्यों में नियुक्त करते हो न? तुम्हारे राज्य की प्रजा कठोर दण्ड से अत्यन्त उद्विग्न होकर तुम्हारे मन्त्रियों का तिरस्कार तो नहीं करती। जैसे पवित्र याजक पतित यजमान का तथा स्त्रियाँ कामचारी पुरुष का तिरस्कार कर देती है, उसी प्रकार प्रजा कठोरतापूर्वक अधिक कर लेने के कारण तुम्हारा अनादर तो नहीं करती? जो साम-दाम आदि उपायों के प्रयोग में कुशल, राजनीति-शास्त्र का विद्वान्, विश्वासी भृत्यों को फोड़ने में लगा हुआ शूर (मरने से न डरने वाला) तथा राजा के राज्य को हड़प लेने की इच्छा रखने वाला है—ऐसे पुरुष को जो राजा नहीं मार डालता है, वह स्वयं उसके हाथ से मारा जाता है। क्या तुमने सदा सन्तुष्ट रहने वाले, शूर-वीर, धैर्यवान्, बुद्धिमान्, पवित्र, कुलीन एवं अपने में अनुराग रखने वाले, रणकर्मदक्ष पुरुष को ही सेनापति बनाया है?

बलवन्तश्च कच्चित् ते मुख्या युद्धविशारदाः।
दृष्टापदानां विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः॥
कच्चिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्।
सम्प्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे॥
कालादिक्रमणे ह्येव भक्तवेतनयोर्भृताः।
भर्तुरप्यतिकुप्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान् कृतः॥
कच्चित् सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः।
कच्चित् प्राणांस्तवार्थेषु संत्यजन्ति समाहिताः॥
कच्चिज्जानपदो विद्वान् दक्षिणः प्रतिभानवान्।
यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः॥

तुम्हारे प्रधान-प्रधान योद्धा (सेनापति) बलवान्, युद्धकुशल और पराक्रमी तो हैं न? क्या तुमने उनके शौर्य की परीक्षा कर ली है? तथा क्या वे तुम्हारे द्वारा सत्कारपूर्वक सम्मान पाते रहते हैं? सैनिकों को देने के लिये नियत किया हुआ समुचित वेतन और भत्ता तुम समय पर दे देते हो न? देने में विलम्ब तो नहीं करते? यदि समय बिताकर भत्ता और वेतन दिये जाते हैं तो सैनिक अपने स्वामी पर भी अत्यन्त कुपित हो जाते हैं और इसके कारण बड़ा भारी अनर्थ घटित हो जाता है। क्या उत्तम कुल में उत्पन्न मन्त्री आदि समस्त प्रधान अधिकारी तुमसे प्रेम करते हैं? क्या वे तुम्हारे लिये एकचित्त होकर अपने प्राणों का त्याग करने के लिये उद्यत रहते हैं? तुमने जिसे राजदूत के पद पर नियुक्त किया है, वह पुरुष अपने ही देश का निवासी, विद्वान्, कुशल, प्रतिभाशाली और जैसा कहा जाय वैसी ही बात दूसरे के सामने कहने वाला और सदसद्विवेकयुक्त है न?

कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः॥
कश्चिद् व्यपास्तानहितान् प्रतियातांश्च सर्वदा।
दुर्बलाननवज्ञाय वर्तसे रिपुसूदन॥
कच्चिन्न लोकायतिकान् ब्राह्मणांस्तात सेवसे।
अनर्थकुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः॥
धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु दुर्बुधाः।
बुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरर्थं प्रवदन्ति ते॥

क्या तुम शत्रु पक्ष के अठारह और अपने पक्ष के पन्द्रह तीर्थों की तीन-तीन अज्ञात गुप्तचरों द्वारा देख-भाल या जाँच-पड़ताल करते रहते हो? जिस शत्रुओं को तुमने राज्य से निकाल दिया है, वे यदि फिर लौटकर आते हैं तो तुम उन्हें दुर्बल समझकर उनकी उपेक्षा तो नहीं करते? तुम कभी नास्तिक ब्राह्मणों का संग तो नहीं करते हो? क्योंकि वे बुद्धि को परमार्थ की ओर से विचलित करने में कुशल होते हैं तथा वास्तव में अज्ञानी होते हुए भी अपने को बहुत बड़ा पण्डित मानते हैं। उनका ज्ञान वेद-विरुद्ध होने के कारण दूषित होता है और वे प्रमाणभूत प्रधान-प्रधान धर्मशास्त्रों के होते हुए भी तार्किक बुद्धि का आश्रय लेकर व्यर्थ बकवाद किया करते हैं, उनसे सावधान रहते हो?।

रामायण का यथार्थ श्रोता

पश्चिम देश में तीन मनुष्य एक ही साथ श्रीवाल्मीकिय रामायण का अध्ययन कर रहे थे। उन तीनों को देखकर किसी आचार्य ने उनमें से एक को एकान्त में बुलाकर पूछा—आपने श्रीरामायण का क्या अर्थ समझा? उसने कहा—चक्रवर्ती महाराज के पुत्र श्रीराम ने पिता की आज्ञा पालन की है। अत: माता पिता की सेवा करना यही शिक्षा मुझे श्रीरामायण से मिली है। आचार्य ने कहा—तब तुम जाओ माता-पिता की सेवा करो।

फिर आचार्य ने दूसरे को बुलाकर पूछा—आपको श्रीरामायण से क्या उपदेश मिला? उसने कहा—चक्रवर्ती महाराज दशरथ के पुत्र बनने पर भी शरीर धारण करने के कारण श्रीराम को कष्ट सहन करना पड़ा। मुझे तो यही उपदेश मिलता है कि शरीर सम्बन्ध ही सारे दु:खों का मूल है, अत: उससे छूटने का उपाय सोचना चाहिये। आचार्य ने कहा—छोड़ो श्रीरामयण को और शरीर सम्बन्ध से छूटने का उपाय करो? फिर तीसरे को बुलाकर आचार्य ने वैसे ही पूछा—उसने कहा हमने श्रीरामायण का सारांश यही समझा है कि—जैसे रावण के सारे उपाय व्यर्थ हो गये वह मारा गया वैसे ही भगवान् श्रीराम की कृपा के बिना मनुष्य का कोई साधन सफल नहीं हो सकता, अत: जीवन का एक मात्र उपाय उनकी कृपा है। यह सुनकर आचार्य ने प्रसन्न होकर कहा, तब तो आप जीवन भर श्रीरामायण पढ़े और मनन करें।

●

सन्त की भावना

दो सन्त कहीं रामत पर जा रहे थे। जङ्गल में से होकर रास्ता था। सन्तों की दृष्टि एक हनुमान जी की अर्चा विग्रह पर पड़ी। वहीं जल-थल का सुपास देखकर ठाकुर सेवा, पूजा, भजन साधन का मन हो आया। आसन लग गया। पुन: एक सन्त स्नान करने चले गये और एक सन्त बैठे थे आसनादि की सुरक्षा में। श्री हनुमान जी को चौड़े में देखे। भाव आया कि आतप वर्षा बात में श्रीहनुमान जी को कष्ट होता होगा। एक झोपड़ी तो कम से कम होनी ही चाहिये। निश्चय हो गया कि अब तो झोपड़ी तैयार करके ही स्नान ध्यान होगा। जङ्गल से फूस, काष्ठ आदि एकत्रित किये। आनन-फानन में (अतिशीघ्र ही) झोपड़ी तैयार हो गई। झोपड़ी बनाकर सन्तोष की साँस ली। तब तक स्नान को गये सन्त भी आ गये। यह सब देखे, सोचे—जङ्गल है कोई रहता है नहीं, जङ्गल में आग लगती ही रहती है। यदि झोपड़ी में भी आग लग कई तो क्या होगा? सोचकर हृदय सिहर गया, फिर तो झोपड़ी उजाड़ देना चाहिये यह निश्चय हो गया। प्रथम तो झोपड़ी बनाने वाले सन्त से कहा; परन्तु वे भला कब उजाड़ते। वे तो खूब सोच-विचार कर बनाये थे। तब वे स्वयं उजाड़ने को उद्यत हो गए। बात बढ़ गई, फरसा, कुल्हाड़ी खंतियाँ उठी। श्रीहनुमान जी से नहीं रहा गया। भला, आप इन भावुकों का अमङ्गल कैसे सह सकते, प्रकट हो गये। बीच-बचाव हो गया। श्रीहनुमान जी ने कहा कि भाई बात तो दोनों की यथार्थ है, अत: बीच का कोई रास्ता निकालो जिसमें दोनों के भाव की रक्षा हो जाय। सन्तों ने श्रीहनुमानजी से पूछा—तब श्रीहनुमान जी ने कहा कि सामने एक चबूतरा बना दो, जब आग लगेगी तो चबूतरे पर आ जाऊँगा अन्यथा झोपड़ी में ही रहूँगा। ऐसा ही किया गया। यह है भक्तों का विलक्षण भाव।

व्रज की गोपियाँ

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा रचित लीलाओं में बाल-लीला एवं रासलीला सर्वाधिक रहस्यमयी है। रासलीला तो इतना रहस्यमयी है कि अल्पज्ञों को शङ्का होने लगती है। रामावतार में भगवान् का व्यावहारिक स्वरूप जगत् के समक्ष मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में जो देखने को मिला था, ठीक उसके विपरीत कृष्णावतार में रासलीला रचाने वाले भगवान् का। एक अवतार में एकपत्नी-व्रत धारण करने वाले भगवान् तो दूसरे अवतार में सोलह हजार पटरानियों से युक्त भगवान् का स्वरूप यही वह रहस्य है, जिसका ज्ञान नहीं होने से अल्पज्ञों के समक्ष उलझन उपस्थित हो जाता है। अत एव इसका परिज्ञान आवश्यक है। जिस भगवान् की चरणरज की प्राप्ति हेतु ऋषि-महर्षिगण, ज्ञानी-ध्यानीगण तपस्या करते-करते अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देते हैं। क्षणमात्र के लिए कृपादृष्टि प्राप्त करने के लिए अभिलषित रहते हैं, वे ही भगवान् व्रज की गोपियों को कैसे अङ्गीकार कर लिए उन गोपियों की क्या विशेषता है? वे गोपियाँ कौन थीं? वृन्दावन में कैसे आयीं? आदि।

द्वापर के पूर्व सत्ययुग एवं त्रेतायुग में भी भगवान् के अनेक अवतार हुए हैं। उन अवतारों में भी भगवान् ने लीलायें की हैं, किन्तु कृष्णावतार में जितनी लीलाएँ भगवान् श्रीहरि ने किया है, उतना किसी अन्य अवतार में नहीं। अवतार के जितने भी भेद हैं, उसमें भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्णतम हैं। भगवान् व्यास ने कहा है—**'कृणस्तु भगवान् स्वयम्'**। इससे स्पष्ट है कि श्रीहरि का पूर्णतम स्वरूप श्रीकृष्ण हैं। पूर्व के अवतारों में देव, दानव, मानव, राक्षस, यक्ष, किन्नर आदि भक्तों ने भगवान् की आराधना द्वारा वर रूप में अनेक प्रकार के वर प्राप्त कर सफल मनोरथ हुए हैं। उन भक्तों में अनेक भक्त को भगवान् द्वापर के अन्त में सफल मनोरथ होने का वरदान दिया था। अत: पूर्व प्रदत्त वर की पूर्ति हेतु भगवान् ने गोपियों को स्वीकार किया, यही रहस्य है। इस रहस्य का उपदेश भगवान् श्रीहरि ने स्वयं ब्रह्माजी को दिया था। भगवान् श्रीहरि ने जब अवतार ग्रहण करने का सङ्कल्प लिया, उसी समय सभी देवताओं (ब्रह्मा, शङ्कर सहित अन्यान्य देवों) को भगवान् ने निर्देश दिया कि आप सभी लोग अपने-अपने अंशों से देवियों के साथ यदुकुल में जन्म धारण करें; क्योंकि तुम सबों की कार्य सिद्धि के लिए मैं अवतार ग्रहण करने जा रहा हूँ। मेरे अवतार ग्रहण करने का कारण यह है कि मेरी वाणी वेद है, ब्राह्मण मुख और गौ शरीर है। आप सभी देवगण मेरे अङ्ग हैं। सन्तगण का निवास तो सदैव मेरे हृदय में रहता है। अत एव जब-जब उन्हें कष्ट पहुँचता है, तब-तब उनकी रक्षा हेतु मैं भूतल पर अवतरित होता हूँ।

तदनन्तर श्रीभगवान् ने वैकुण्ठ स्थित समस्त ऐश्वर्यों को चौरासी कोस की भूमि व्रज में भेज दिया और अपने, लक्ष्मीजी, ब्रह्माजी, शङ्करजी आदि की उपस्थिति नियत कर कहा कि हे ब्रह्मण! पूर्व के अनेक युगों में जो श्रुतियाँ, मुनियों की पत्नियाँ, अयोध्या की महिलाएँ, यज्ञ में स्थापित की हुयी सीता जनकपुर एवं कोसल देश की निवासिनी सुन्दरियाँ तथा पुलिन्द कन्याएँ थीं तथा जिनको मैं पूर्ववर्ती युगों में वरदान दे चुका हूँ वे सभी मेरे पुण्यमय व्रज-गोपी रूप में यूथों के साथ पधारेंगी।

रमायामधुमाधण्या विरजायास्तथैव च।
ललितायाविशाखायामाया यूथोभविष्यति।।
एवं ह्यष्टसखीनां च सखीनां किलषोडश।
द्वात्रिंशच्च सखीनां च यूथा भाष्याव्रजे विधे।।
श्रुतिरूपा ऋषिरूपा मैथिला: कौशलास्तथा।
अयोध्यापुरवासिन्यो यज्ञसीता पुलिंदका:।।

यासां मया वरोदत्तो पूर्वे पूर्वे युगे युगे ।
तासां यूथा भविष्यन्ति गोपीनां मद्व्रजे शुभे ।।

तदनन्तर ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् से उन सभी स्त्रियों के पुण्य कर्म जानने की इच्छा की जिसके कारण श्रीहरि ने उन्हें अपनी लीला का अङ्ग बनाया। पूर्वकाल में श्रुतियों ने श्वेतद्वीप में जाकर वहाँ मेरे स्वरूपभूत भूमा-(विराट् पुरुष या परब्रह्म) का मधुर वाणी में स्तवन किया। तब सहस्रपाद विराट् पुरुष प्रसन्न हो गये और बोले—श्रुतियो! तुम्हें जो भी पाने की इच्छा हो, वह वर माँग लो। जिनके ऊपर मैं स्वयं प्रसन्न हो गया, उनके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है?।

श्रुतियाँ बोलीं—भगवन्! आप मन-वाणी से नहीं जाने जा सकते; अत: हम आपको जानने में असमर्थ हैं। पुराणवेत्ता ज्ञानीपुरुष यहाँ केवल 'आनन्दमात्र' बताते हैं, अपने उसी रूप का हमें दर्शन कराइये। प्रभो! वर तो यही दीजिये। श्रुतियों की ऐसी बात सुनकर भगवान् ने उन्हें अपने दिव्य गोलोकधाम का दर्शन कराया, जो प्रकृति से परे है। वह लोक ज्ञानानन्द स्वरूप, अविनाशी तथा निर्विकार है। वहाँ 'वृन्दावन' नामक वन है, जो कामपूरक कल्पवृक्षों से सुशोभित है। मनोहर निकुञ्जों से सम्पन्न वह वृन्दावन सभी ऋतुओं में सुखदायी है। वहाँ सुन्दर झरनों और गुफाओं से सुशोभित 'गोवर्धन' नामक गिरि है। रत्न एवं धातुओं से भरा हुआ वह श्रीमान् पर्वत सुन्दर पक्षियों से आवृत है। वहाँ स्वच्छ जल वाली श्रेष्ठ नदी 'यमुना' भी लहराती है। उसके दोनों तट रत्नों से बँधे हैं। हंस और कमल आदि से वह सदा व्याप्त रहती है। वहाँ विविध रास-रङ्ग से उन्मत्त गोपियों का समुदाय शोभा पाता है। उसी गोपी-समुदाय के मध्यभाग में किशोर वय से सुशोभित भगवान् श्रीकृष्ण विराजते हैं। उन श्रुतियों को इस प्रकार अपना लोक दिखाकर भगवान् बोले—'कहो, तुम्हारे लिये अब क्या करूँ? तुमने मेरा यह लोक तो देख ही लिया, इससे उत्तम दूसरा कोई वर नहीं है'।

श्रुतियों ने कहा—प्रभो! आपके करोड़ों काम-देवों के समान मनोहर श्रीविग्रह को देखकर हममें कामिनी-भाव आ गया है और हमें आपसे मिलने की उत्कट इच्छा हो रही है। हम विरह-ताप से संतप्त हैं—इसमें संदेह नहीं है। अत: आपके लोक में रहने वाली गोपियाँ आपका सङ्ग पाने के लिये जैसे आपकी सेवा करती हैं, हमारी भी वैसी ही अभिलाषा है।।

श्रीहरि बोले—श्रुतियो! तुमलोगों का यह मनोरथ दुर्लभ एवं दुर्घट है; फिर भी मैं इसका भलीभाँति अनुमोदन कर चुका हूँ, अत: यह सत्य होकर रहेगा। आगे होने वाली सृष्टि में जब ब्रह्मा जगत् की रचना में संलग्न होंगे, उस समय सारस्वत-कल्प बीतने पर तुम सभी श्रुतियाँ व्रज में गोपियाँ होओगी। भूमण्डल पर भारतवर्ष में मेरे मथुरामण्डल के अन्तर्गत वृन्दावन में रासमण्डल के भीतर मैं तुम्हारा प्रियतम बनूँगा। तुम्हारा मेरे प्रति सुदृढ़ प्रेम होगा, जो सब प्रेमों से बढ़कर है। तब तुम सब श्रुतियाँ मुझे पाकर सफल-मनोरथ होओगी।।

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मण! पूर्व कल्प में मैंने वर दे दिया है, उसी के प्रभाव से वे श्रुतियाँ व्रज में गोपियाँ होंगी। अब अन्य गोपियों के लक्षण सुनो—त्रेतायुग में देवताओं की रक्षा और राक्षसों का संहार करने के लिये मेरे स्वरूपभूत महापराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी अवतीर्ण हुए थे। कमललोचन श्रीराम ने सीताजी के स्वयंवर में जाकर धनुष तोड़ा और उन जनकनन्दिनी श्रीसीताजी के साथ विवाह किया। ब्रह्माजी! उस अवसर पर जनकपुर की स्त्रियाँ श्रीराम को देखकर प्रेमविह्वल हो गयीं। उन्होंने एकान्त में उन महाभाग से अपना अभिप्राय प्रकट किया—'राघव! आप हमारे परम प्रियतम बन जायँ'। तब श्रीराम ने कहा—'सुन्दरियो! तुम

शोक मत करो। द्वापर के अन्त में मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। तुमलोग परम श्रद्धा और भक्ति के साथ तीर्थ, दान, तप, शौच एवं सदाचार का भली-भाँति पालन करती रहो। तुम्हें व्रज में गोपी होने का सुअवसर प्राप्त होगा'। इस प्रकार वर देकर धनुर्धारी करुणानिधि श्रीराम ने अयोध्या के लिये प्रस्थान कर दिया। उस समय मार्ग में अपने प्रताप से उन्होंने भृगुकुलनन्दन परशुरामजी को परास्त कर दिया था। कोसल-जनपद की स्त्रियों ने भी राजपथ से जाते हुए उन कमनीय-कान्ति राम को देखा। उनकी सुन्दरता कामदेव को मोहित कर रही थी। उन स्त्रियों ने श्रीराम को मन-ही-मन पति के रूप में वरण कर लिया। उस समय सर्वज्ञ श्रीराम ने उन समस्त स्त्रियों को मन-ही-मन वर दिया—'तुम सभी व्रज में गोपियाँ होओगी और उस समय मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा॥

फिर सीता और सैनिकों के साथ रघुनाथ जी अयोध्या पधारे। यह सुनकर अयोध्या में रहने वाली स्त्रियाँ उन्हें देखने के लिये आयीं। श्रीराम को देखकर उनका मन मुग्ध हो गया। वे प्रेम से विह्वल हो मूर्च्छित-सी हो गयीं। फिर वे श्रीराम के व्रत में परायण होकर सरयू के तट पर तपस्या करने लगीं। तब उनके सामने आकाशवाणी हुई—'द्वापर के अन्त में यमुना के किनारे वृन्दावन में तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे, इसमें संदेह नहीं है।

जिस समय श्रीराम ने पिता की आज्ञा से दण्डक-वन की यात्रा की, सीताजी तथा लक्ष्मण भी उनके साथ थे और वे हाथ में धनुष लेकर इधर-उधर विचर रहे थे। वहीं बहुत-से मुनि थे। उनकी गोपाल-वेषधारी भगवान् के स्वरूप में निष्ठा थी। रासलीला के निमित्त वे भगवान् का ध्यान करते थे। उस समय श्रीराम की युवा अवस्था थी—वे हाथ में धनुष-बाण धारण किये हुए थे। जटाओं के मुकुट से उनकी विचित्र शोभा थी। अपने आश्रम पर पधारे हुए श्रीराम में उन मुनियों का ध्यान लग गया। (वे ऋषिलोग गोपाल-वेषधारी भगवान् के उपासक थे) अत: दूसरे ही स्वरूप में आये हुए श्रीराम को देखकर सबके मन में अत्यन्त आश्चर्य हो गया। उनकी समाधि टूट गयी और देखा तो करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर श्रीराम दृष्टिगोचर हुए। तब वे बोल उठे—'अहो! आज हमारे गोपाल जी वंशी एवं बेंत के बिना ही पधारे हैं'। इस प्रकार मन-ही-मन विचार कर सबने श्रीराम को प्रणाम किया और उनकी उत्तम स्तुति करने लगे॥

तब श्रीराम ने कहा—'मुनियो! वर माँगो'। यह सुनकर सभी ने एक स्वर से कहा—'जिस भाँति सीता आपके प्रेम को प्राप्त हैं, वैसे ही हम भी चाहते हैं'॥

श्रीराम बोले—यदि तुम्हारी ऐसी प्रार्थना है कि जैसे भाई लक्ष्मण हैं, वैसे ही हम भी आपके भाई बन जायँ, तब तो आज ही मेरे द्वारा तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो सकती है; किन्तु तुमने तो 'सीता' के सामन होने का वर माँगा है। अत: यह वर महान् कठिन और दुर्लभ है; क्योंकि इस समय मैंने एकपत्नी-व्रत धारण कर रखा है। मैं मर्यादा की रक्षा में तत्पर रहकर 'मर्यादापुरुषोत्तम' भी कहलाता हूँ। अत एव तुम्हें मेरे वर का आदर करके द्वापर के अन्त में जन्म धारण करना होगा और वहीं मैं तुम्हारे इस उत्तम मनोरथ को पूर्ण करूँगा॥

इस प्रकार वर देकर श्रीराम स्वयं पञ्चवटी पधारे। वहाँ पर्णकुटी में रहकर वनवास की अवधि पूरी करने लगे। उस समय भीलों की स्त्रियों ने उन्हें देखा। उनमें मिलने की उत्कट इच्छा उत्पन्न होने के कारण वे प्रेम से विह्वल हो गयीं। यहाँ तक कि श्रीराम के चरणों की धूल मस्तक पर रखकर अपने प्राण छोड़ने की तैयारी करने लगीं। उस समय श्रीराम ब्रह्मचारी के वेष में वहाँ आये और इस

प्रकार बोले—'स्त्रियो! तुम व्यर्थ ही प्राण त्यागना चाहती हो, ऐसा मत करो। द्वापर के शेष होने पर वृन्दावन में तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा'। इस प्रकार का आदेश देकर श्रीराम का वह ब्रह्मचारी रूप वहीं अन्तर्हित हो गया॥

तत्पश्चात् श्रीराम ने सुग्रीव आदि प्रधान वानरों की सहायता से लङ्का में जाकर रावण-प्रभृति राक्षसों को परास्त किया। फिर सीता को पाकर पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या चले गये। राजाधिराज श्रीराम ने लोकापवाद के कारण सीता को वन में छोड़ दिया। अहो! भूमण्डल पर दुर्जनों का होना बहुत ही दु:खदायी है। जब-जब कमललोचन श्रीराम यज्ञ करते थे, तब-तब विधिपूर्वक सुवर्णमयी सीता की प्रतिमा बनायी जाती थी। इसलिये श्रीराम-भवन में यज्ञ-सीताओं का एक समूह ही एकत्र हो गया। वे सभी दिव्य चैतन्य घनस्वरूपा होकर श्रीराम के पास गयीं। उस समय श्रीराम ने उनसे कहा—'प्रियाओ! मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता'। वे सभी प्रेमपरायणा सीता-मूर्तियाँ दशरथनन्दन श्रीराम से कहने लगीं—'ऐसा क्यों? हम तो आपकी सेवा करने वाली हैं। हमारा नाम भी मिथिलेशकुमारी सीता है और हम उत्तम व्रत का पालन करने वाली सतियाँ भी हैं, फिर हमें आप ग्रहण क्यों नहीं करते? यज्ञ करते समय हम आपकी अर्धाङ्गिनी बनकर निरन्तर कार्यों का सञ्चालन करती रहीं हैं। आप धर्मात्मा और वेद के मार्ग का अवलम्बन करने वाले हैं, यह अधर्मपूर्ण बात आपके श्रीमुख से कैसे निकल रही हैं? यदि आप स्त्री का हाथ पकड़कर उसे त्यागते हैं तो आपको पाप का भागी होना पड़ेगा'॥

श्रीराम बोले—सतियो! तुमने मुझसे जो बात कही है, वह बहुत ही उचित और सत्य है। परन्तु मैंने 'एकपत्नी-व्रत' धारण कर रखा है? सभी लोग मुझे 'राजर्षि' कहते हैं। अत: नियम को छोड़ भी नहीं सकता। एकमात्र सीता ही मेरी सहधर्मिणी है। इसलिये तुम सभी द्वापर के अन्त में श्रेष्ठ वृन्दावन में पधारना, वहीं तुम्हारी मन:कामना पूर्ण करूँगा।

भगवान् श्रीहरि ने कहा—ब्रह्मन्! वे यज्ञ-सीता ही व्रज में गोपियाँ होंगी। इसीलिए व्रज की रास का महत्त्व संसार के सभी पदार्थों से ऊपर है; क्योंकि रासलीला में प्रेम है। वह प्रेम कितना है? इसका अनुमान किसी ने भी नहीं लगा सका। बड़े-बड़े ध्यानी, योगीजन रास के प्रेम रूपी सागर में अवगाहन करते करते थक गए, किन्तु उसकी गहराई नहीं नाप सके। भला रास के प्रेम की गहराई कोई भी व्यक्ति कैसे नाप सकता; क्योंकि एक जन्म की कथा, कुछ काल की बात नहीं है, बल्कि अनेक जन्मों एवं अनेक युगों से चले आ रहे अटूट प्रेम का साक्षात् रूप है। यही रास की उत्तमता का रहस्य है।

●

सौ करोड़ रामायण का विभाजन

रामायण के किये हुए तीनों भागों को विष्णु ने अलग-अलग बाँट दिया। उनमें से तैंतीस करोड़ तैंतीस लाख तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस ३३३३३३ ३३३ मन्त्रों का एक भाग उन्होंने देवताओं को दिया। ३३३३३३३३३ का दूसरा भाग मुनीश्वरों को पृथ्वी तल के लिए दिया और ३३३३३३३३३ का तीसरा भाग नागों को दिया। देवता अपने भाग को बड़ी प्रसन्नता से देवलोक में ले गये। पन्नगगण अपने भाग को सहर्ष पाताल में ले गये। हे गिरीन्द्र जी! उसका तीसरा हिस्सा पृथ्वी पर रह गया।

शेषावतार श्रीस्वामी रामानुजाचार्य सहस्राब्दी वर्ष

आज से एकहजार वर्ष पूर्व दक्षिण भारत के चेन्नई मण्डलान्तर्गत भूतपुरी (पेरम्वदुर) में शेषावतार भगवत् रामानुजाचार्यजी महाराज का इस भूतल पर हारीत गोत्रीय श्रोत्रीय ब्राह्मण पं० केशव भट्ट जी के पुत्र के रूप में अवतरण हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा भूतपुरी में ही हुयी, किन्तु विशेष अथवा उच्चशिक्षा हेतु आप काञ्चीपुरम् चले गये। बाल्यावस्था में ही इनके पिता की मृत्यु हो गयी। तदुपरान्त पारिवारिकजनों ने घर-कुल के पोषणादि हेतु इनका विवाह कर दिया, किन्तु वैवाहिक जीवन स्वामीजी को शिक्षा और भगवद् गुणानुवाद में बाधक अनुभव हो रहा था। काञ्चीपुरम् उन दिनों वेदान्त अध्ययन का वृहद् केन्द्र के रूप में पूरे भारत में प्रसिद्ध था। काञ्ची में पं० यादवप्रकाश जी वेदान्त एवं तन्त्रशास्त्र के उद्भट विद्वान् थे। भगवद् रामानुजाचार्य जी उन्हीं यादवप्रकाश जी के सन्निधि में रहकर उनसे वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करने लगे। अध्ययन काल में भगवद् रामानुजाचार्य जी महाराज ने अपनी प्रतिभा व सद्व्यवहार से अपने सहपाठियों के साथ अपने गुरु पं० यादवप्रकाश जी के अत्यन्त प्रिय व अन्तरङ्ग बन गये, किन्तु यादवप्रकाश जी से यह अन्तरङ्गता दीर्घायु नहीं रही।

एक दिन भगवान् के नेत्र विषयक वर्णन एवं स्वरूप विषयक वर्णन के क्रम में भगवद् रामानुजाचार्य जी ने यादवप्रकाश द्वारा किए गए अनुचित प्रतिपादन का नम्रतापूर्वक, किन्तु स्पष्टतया खण्डन कर दिया। यादवप्रकाश जी को यह अच्छा नहीं लगा। वस्तुत: यादवप्रकाश जी अद्वैतसिद्धान्त के अनुयायी अधिक गुरु कम थे। अत एव स्वामी रामानुजाचार्य जी को अद्वैतद्रोही मानते हुए उनकी हत्या का षडयन्त्र रच दिया, भगवान् वरदराज की कृपा से यादवप्रकाश का षडयन्त्र निष्फल हो गया और स्वामी जी बच गये। कालान्तर में अपनी माँ की प्रेरणा से यादव प्रकाश जो स्वामी रामानुजाचार्य जी के विद्या गुरु थे वे ही स्वामी रामानुजाचार्य जी से समाश्रित (शिष्य) हो संन्यास ग्रहण किए।

स्वामी रामानुजाचार्य जी ने अध्ययन के उपरान्त विशेष प्रयत्न द्वारा अपनी पत्नी को मायके प्रेषित कर संन्यस्त जीवन व्यतीत करते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन भगवद् गुणानुवाद में लगा दिया। एतदर्थ उन्होंने विभिन्न आचार्यों (पाँच) से सद्ग्रन्थों का (गीता, वाल्मीकि रामायण, उपनिषद्) आदि का अध्ययन किया। यद्यपि शास्त्रों का अध्ययन करने की उन्हें आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि वे तो साक्षाद् शेष के अवतार थे, किन्तु अवतार का प्रमुख गुण लोकोपदेश होता है, अत: कर्म का अनुपालन करना आवश्यक था। तदनन्तर ब्रह्मसूत्र, गीता आदि पर आपने भाष्य का प्रणयन किया। आपने अपने उपदेश एवं ग्रन्थों द्वारा भगवान् के सत् स्वरूप का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है।

आज अर्थात् वर्तमान संवत्सर भगवद् रामानुजाचार्य जी का सहस्राब्दी वर्ष के रूप में सम्पूर्ण देश में श्रीवैष्णवों द्वारा मनाया जा रहा है। कहीं श्रीभाष्य का व्याख्यान, कहीं यज्ञ का आयोजन आदि। कुछ सन्तों द्वारा सहस्रकुण्डीय यज्ञ भी सहस्राब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित हो रहा है। यद्यपि उत्तर भारत विशेषकर मगध क्षेत्र के श्रीवैष्णव भक्तों का प्रमुख केन्द्र सरौती, हुलासगंज, मेहन्दिया आदि स्थानों पर यतिराज स्वामी की जयन्ती वैशाख मास में दिव्य रूप से मनाते हुए विविध कार्यक्रम सम्पन्न हुए थे, किन्तु वे सभी कार्यक्रम एक दिवसीय थे। अत: पूज्यपाद अनन्तश्री विभूषित स्वामी रङ्गरामानुचार्य जी महाराज ने उसी समय अपने उद्बोधन में कहा था कि स्वामी जी की

जयन्ती तो हम सभी वैष्णवगण प्रत्येक वर्ष मनाते ही हैं, किन्तु इस वर्ष स्वामी जी के अवतरण का एक हजारवाँ वर्ष है, अत: एक दिवसीय कार्यक्रम सहस्राब्दी वर्ष के अनुरूप नहीं है। अत एव सहस्राब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में इस वर्ष का चातुर्मास्य व्रत यतिराज स्वामी द्वारा रचित गीताभाष्य पर आधारित होगा। अर्थात् गीता पर यतिराज स्वामी द्वारा रचित भाष्य पर प्रवचन होगा। जिसका सार है—

चिद्, अचिद् और ईश्वर–ये तीन तत्त्व हैं। इनमें चित् को ही चेतन, जीव और जीवात्मा कहते हैं। गीता में शरीरी, देही, आत्मा, क्षेत्रज्ञ, क्षेत्री, अव्यक्त, अक्षर, ब्रह्म और जीव आदि शब्दों से जीवात्मा का वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्याय में शरीरी, देही और आत्मा शब्द से, तृतीय-चतुर्थ अध्याय में आत्मा शब्द से, पञ्चम अध्याय में आत्मा, देही और ब्रह्म शब्द से, षष्ठ अध्याय में आत्मा और ब्रह्म शब्द से सप्तम अध्याय में जीव और परा प्रकृति शब्द से, अष्टम अध्याय में ब्रह्म, अक्षर और अव्यक्त शब्द से, दशम अध्याय में आत्मा शब्द से, बारहवें अध्याय में अव्यक्त और अक्षर शब्द से, तेरहवें अध्याय में क्षेत्रज्ञ, ज्ञेय, क्षेत्री, आत्मा और पुरुष शब्द से, पन्द्रहवें अध्याय में जीव, अक्षर और पुरुष शब्द से जीवात्मा का प्रतिपादन किया गया है।

द्वितीय अध्याय के २९वें श्लोक से भगवान् ने कहा है कि कोई जीवात्मा को आश्चर्य की तरह देखता है, कोई उसी रूप में कहता है, कोई उसी रूप में सुनता है और कोई उसी रूप में सुनकर जानता है। अत: आत्मा का विलक्षण स्वरूप है।

दार्शनिकों में प्रकृति और ईश्वर तत्त्व को लेकर उतना विवाद नहीं है जितना आत्मा के स्वरूप पर है। कुछ लोगों ने ब्रह्म और जीव को अभिन्न रूप में स्वीकार किया है; परन्तु गीता ने इस विवाद को स्पष्ट शब्दों में सुलझा दिया है। अर्जुन में स्वजनों के वध से जन्य पाप के भय से उत्पन्न मोह को दूर करने के लिए भगवान् ने प्रथम जन्म-मृत्यु आदि विकारों से रहित आत्मस्वरूप का ही परिचय दिया है।

द्वितीय अध्याय के १२वें श्लोक से ३०वें श्लोक तक आत्मतत्त्व का वर्णन किया गया है। भगवान् ने अर्जुन से कहा कि—

नन्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।

भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् ब्रह्म थे; क्योंकि अर्जुन ने १०वें अध्याय के १२, १३, १४ श्लोकों से कहा है कि आप परम ब्रह्म एवं परमधाम हैं। देवर्षि नारद, असित, व्यास आदि ने भी इसी रूप में आपका वर्णन किया है। स्वयं आपने भी ७वें अध्याय के छठे श्लोक से कहा है कि मैं ही सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न एवं प्रलय करने वाला हूँ।

अगर जीव ब्रह्म होता तो भगवान् अर्जुन से कहते कि जो मैं हूँ, वहीं तुम हो और वही राजागण भी हैं। अर्थात् ब्रह्म, जीव को एक मानकर उपदेश करते; परन्तु उन्होंने 'अहम्' शब्द से अपने (ब्रह्म) को और 'त्वम्' (तुम) तथा इमे (ये) शब्द से अर्जुन और राजाओं को पृथक् रूप बतलाकर ब्रह्म और जीवात्मा एक तत्त्व नहीं है यह सिद्ध कर दिया है।

भगवान् ने दशम अध्याय के २०वें श्लोक से कहा है कि सभी प्राणियों में रहने वाली आत्मा मैं हूँ। इसका भाव है कि दशम अध्याय विभूतियोग है उसमें भगवान् ने अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए सभी आत्माओं को अपनी आत्मा कहा है। वहाँ सभी अच्छी चीजों की भी अपना स्वरूप ही कहा है जैसे उच्चै:श्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी आदि को।

वृहदारण्यकादि उपनिषद् वचनों के अनुसार समस्त जड़-चेतन भगवान् के शरीर हैं और भगवान् सबकी आत्मा हैं। शरीर और आत्मा में अभेद

व्यवहार होने से शरीर वाचक शब्द आत्मा पर्यन्त का बोधक होता है। इसी भाव से भगवान् ने जब आत्माओं और उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी आदि पदार्थों को अपना स्वरूप कहा है, इससे भगवान् में और उनकी विभूति स्वरूप जड़-चेतन में अभेद सिद्ध नहीं होता।

पन्द्रहवें अध्याय के ७वें श्लोक में भगवान् ने जीव को अपना अंश कहा है। इसका भाव है कि प्रकृति और जीव–ये दोनों भगवान् के शरीर होने से उनके विशेषण हैं और भगवान् दोनों के विशेष्य हैं। विशेषण और विशेष्य में विशेषण अंश और विशेष्य अंशी होता है। अत एव विशेष्य होने से भगवान् अंशी और विशेषण होने से जीव अंश है।

कुछ लोग 'तत्त्वमसि' महावाक्य का अर्थ ब्रह्म और जीव का अभेद के लिए करते हैं, जबकि समुचित अर्थ है–सत् ब्रह्म जड़-चेतन रूप जगत् की आत्मा हैं और जगत् उनका शरीर है। जड़-चेतन रूप जगत् और ब्रह्म में शरीर और आत्मा का सम्बन्ध होने के कारण 'तत्त्वमसि' में त्वम् शब्द जीव के अन्दर अन्तर्यामी रूप से रहने वाला ब्रह्म का वाचक है और तत् शब्द सत् कारण रूप ब्रह्म का वाचक है। अतः उसका अर्थ होता है कि जीव जिसका शरीर है वह अन्तर्यामी ब्रह्म और जगत् के कारण रूप परब्रह्म एक ही हैं। अर्थात् दोनों में अभेद है। इसलिए उद्दालक ने श्वेतकेतु से कहा कि तुझ (जीव) में अन्तर्यामी रूप में रहने वाला ब्रह्म और जगत् के कारण रूप ब्रह्म एक ही हैं। इससे जीव और ब्रह्म में अभेद सिद्ध नहीं होता।

भगवान् ने जीवात्मा को नाशरहित, अव्यक्त, अचिन्त्य, अविकार्य अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, अज, नित्य, शाश्वत, पुराण सर्वगत, स्थाणु, अचल और सनातन कहा है।

स्थूल जड़-पदार्थों के समान प्रत्यक्ष न होने के कारण जीव अव्यक्त है, प्राकृत पदार्थों के समान चिन्तन का विषय न होने से अचिन्त्य कहा गया है। आत्मा के स्वरूप में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता, अतः अविकार्य है।

मुण्डकोपनिषद् (३.१.१९) में यह आत्मा अणु है–ऐसा कहा गया है। इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् (५.९) में जीवात्मा को अत्यन्त सूक्ष्म कहा है। गीता को उपनिषद् के सार होने से १३वें अध्याय के १५वें श्लोक में भी आत्मा को अत्यन्त सूक्ष्म अणु रूप में वर्णन किया गया है। यही कारण है कि उसे शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, जल गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकता है। अतः जीवात्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है।

आत्मा का जन्म नहीं होता, इसलिए अज कही गयी है। पूर्व शरीर को त्याग देना मृत्यु और नूतन शरीर में प्रवेश करना जन्म है, इतने मात्र से आत्मा में जन्म-मृत्यु का व्यवहार होता है। जीवात्मा स्वरूपतः राग-द्वेष आदि विकारों से रहित है, किन्तु प्रकृति के सम्बन्ध से उसमें रागादि विकार आते हैं। वे विकार जीव में जब तक रहते हैं तब तक जीव पूर्ण सुखी नहीं होता। उन्हीं दोषों के कारण ज्ञानानन्द स्वरूप जीवात्मा अज्ञानी बना रहता है। शास्त्र में कहा है कि जीवात्मा न देव है न मनुष्य है, न तिर्यक् और न स्थावर। ये सब भेद शरीर रूपी आकृति में रहने वाले हैं। वस्तुतः आत्मा ज्ञानानन्दमय तथा परमात्मा का शेष (सेवक) है।

माया के सम्बन्ध से जीव का ज्ञान सङ्कुचित रहता है। पाप रूप मल के कारण जीव के अन्दर जो विशेष ज्ञान-शक्ति है, वह तिरोहित रहती है। विशेष पुण्य के प्रभाव से या भगवत्कृपा से तब जीव माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है, जब उसकी अल्पज्ञता नष्ट हो जाती है वह सर्वज्ञ बन जाता है। दूसरी भी जो शक्तियाँ जीव के अन्दर माया के कारण तिरोहित रहती हैं, वे सब प्रकट हो

जाती हैं। उस अवस्था को मुक्तावस्था कहते हैं। मुक्तावस्था को प्राप्त जीव ब्रह्म के समान सर्वज्ञ बतलाया गया है कि ज्ञानीपुरुष पुण्य-पाप से छूटकर निर्मल होकर परमात्मा के समान बन जाता है। यही भाव गीता १४वें अध्याय के द्वितीय श्लोक से कहा गया है।

'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' (मु० ३.२.९) इस उपनिषद् मन्त्र से कहा गया है कि ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि मुक्तावस्था में जीव ब्रह्म से अलग नहीं रहता? ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर समाधान है—'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति' इस मन्त्र में 'इवार्थे एव शब्दः' इस निघण्टु वचन के अनुसार इव अर्थ में एव शब्द का प्रयोग हुआ है। इसलिए इस मन्त्र का अर्थ है कि ब्रह्म को जानने वाला जीव ब्रह्म के समान निर्मल एवं ज्ञानानन्दमय हो जाता है। अतः ब्रह्म और जीव भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् (३.१९) में कहा गया है कि भगवान् आँख, नाक, कान आदि ज्ञानेन्द्रियों और हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियों के विना भी ज्ञान द्वारा उन इन्द्रियों के देखना, सुनना, चलना, ग्रहण करना आदि सभी कर्मों को करते हैं, उसी प्रकार माया के सम्बन्ध से रहित सर्वज्ञ जीवात्मा भी अपने ज्ञान द्वारा चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रियों और हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियों के व्यापारों को करने में समर्थ हो जाता है। इसीलिए गीता के तेरहवें अध्याय में कहा गया है कि वे सब माया के सम्बन्ध से रहित विशुद्ध जीवात्म-स्वरूप का ही वर्णन हैं।

प्रकृति से मुक्त जीवात्मा में वे सारे गुण समन्वित होते हैं। परमात्मा, ईश्वर और महेश्वर आदि शब्द जीवात्मा के लिए ही आये हैं।

अध्याय १३.२४ में शरीर और मन के अर्थ में आत्मा शब्द का प्रयोग किया गया है। शरीर और मन से उत्कृष्ट होने के कारण जीवात्मा के लिए परमात्मा शब्द आया है। शरीर के नियामक, धारक एवं स्वामी होने से जीवात्मा को शरीर, इन्द्रिय और मन का महेश्वर कहा गया है।

जड़, प्रकृति, माया और अविद्या इन शब्दों से प्रकृति का वर्णन किया गया है। इसे ज्ञानशून्य होने से जड़, विकार उत्पन्न करने के कारण प्रकृति, देह में आत्मबुद्धि, परतन्त्र आत्मा में स्वतन्त्र बुद्धि, अनीश्वर में ईश्वर बुद्धि, अन्यशेषत्व आदि विपरीत ज्ञान उत्पन्न करने से अविद्या तथा सृष्टि के विचित्र कार्यों को करने से माया कहते हैं। यह भगवान् की अध्यक्षता में रहकर सृष्टि के कार्यों को करती है। इसीलिए भगवान् मायापति हैं।

सप्तम अध्याय के ४-५वें श्लोक में दो प्रकार की प्रकृति कही गयी है–अपरा और परा। अपरा प्रकृति ये हैं–पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहङ्कार, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

जीव परा प्रकृति है, जो शरीर रूप में जगत् को धारण किये हुए है। अपरा प्रकृति ही माया है, यह प्रकृति नित्य और परिणामी है। यह सृष्टि अवस्था में नाम-रूप से युक्त होने के कारण स्थूल रूप में रहती है और प्रलयकाल में नाम रूप-विभाग से रहित होने के कारण सूक्ष्मावस्था में रहती है। यह गीता के अष्टम अध्याय में अव्यक्त शब्द से कही गयी है। सृष्टिकर्त्ता के सङ्कल्प होने पर उसी अव्यक्त से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहङ्कार, अहङ्कार से पञ्चमहाभूत, ग्यारह इन्द्रियाँ और पञ्चविषय उत्पन्न होते हैं। इसी क्रम से जगत् का सृजन होता है। इच्छा, द्वेष, सुख और दुःख ये प्रकृति के विकार हैं। सत्त्व, रज और तम–ये तीनों गुण प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं। ये तीनों जीवात्मा के लिए बन्धनकारक हैं। सत्त्वगुण प्राकृत सुख और ज्ञान से जीव को बन्धन में डालता है। रजोगुण तृष्णा और आसक्ति उत्पन्न करता है। उनसे जीव सकाम

कर्म में प्रवृत्त हो जाता है। तमोगुण प्रमाद, आलस्य और निद्रा उत्पन्न कर जीव को कष्ट देता है।

तेरहवें अध्याय के १९वें श्लोक से भगवान् ने कहा है कि आत्मा की तरह प्रकृति भी अनादि है। शरीर के आकार में परिणत प्रकृति ही इच्छा-द्वेष आदि विकारों द्वारा जीवों को बाँधती है और वही अमानित्व, अदम्भित्व आदि बीस प्रकार के गुणों द्वारा जीव स्वरूप का ज्ञान कराकर मोक्ष में कारण बनती है। सभी कर्मों का कर्तृत्त्व प्रकृति में है, आत्मा में नहीं। आत्मा केवल सुख-दुःखों को भोगने वाली है।

प्रकृति को उपनिषद् में भोग्य कहा गया है। वह तीन रूप में जीवात्मा के भाग में आती है, भोग–भोगसाधन और भोगस्थान। रूपादि पञ्च विषय भोग रूप प्रकृति है, ग्यारह इन्द्रियाँ साधन रूप प्रकृति हैं और जीवात्मा जहाँ पर रहकर रूपादि पाँच विषयों का भोग करता है, वह स्थान रूप प्रकृति है।

प्रश्न—'नेह नानास्ति किञ्चन०' 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति इह नानेव पश्यति' (वृ० ३.४.४.१९)। अर्थात् 'ब्रह्म के अतिरिक्त अनेक प्रकार के पदार्थ नहीं हैं', 'जो ब्रह्म से भिन्न पदार्थों को देखता है, वह बार-बार मृत्यु को प्राप्त करता है'। ऐसा अनेक श्रुति मन्त्र हैं जिनसे माया मिथ्या सिद्ध होती है, अतः माया सत्य कैसे मानी जाय?

उत्तर—ऊपर जो श्रुति वचन दिये गये हैं उनसे जगत् मिथ्या सिद्ध नहीं होता; क्योंकि तात्पर्य उनका है कि जड़-चेतनमय सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का शरीर है, इसलिए ब्रह्मात्मक कहा गया है। ब्रह्म के शरीर रूप जड़-चेतन के अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है। जो जगत् को ब्रह्म के शरीर से भिन्न रूप में देखता है। वह बार-बार मृत्यु के चक्र में पड़ा रहता है। इसलिए माया को सत्य मानने में श्रुति मन्त्रों से किसी प्रकार का विरोध नहीं है। जिस स्थूल रूप में जगत् देखा जा रहा है, व प्रलयकाल में सूक्ष्म रूप हो जाता है। इतने मात्र से जगत् के सम्बन्ध में मिथ्यात्वबुद्धि हो जाती है। वस्तुतः मिथ्या है नहीं, यह परिणामी है। स्थूल जगत् का प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। सूक्ष्म पर जाकर विराम कर जाता है। प्रलय के बाद भी सूक्ष्म से स्थूल की सृष्टि होती है।

जड़-चेतन का समुदाय जगत् है, जगत् का सृजन, पालन और संहार करने वाले को ब्रह्म कहते हैं। उसी को गीता में भगवान् कृष्ण, सर्वेश्वर, परब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर, पुरुषोत्तम, योगेश्वर, विष्णु आदि नामों से वर्णन किया गया है। जड़-चेतनमय जगत् ब्रह्म का शरीर है और ब्रह्म सबकी आत्मा है। जैसे शरीर का आधार, नियामक और स्वामी जीव है, उसी प्रकार जड़-चेतनमय जगत् का आधार, नियामक और स्वामी भगवान् हैं। जैसे शरीर के अङ्गों में विकार होने पर आत्मा विकृत नहीं होती है, वैसे ही जगत् के विकार से परमात्मा विकृत नहीं होते। किसी भी कार्य के तीन कारण होते हैं। उपादान, निमित्त और सहकारी।

भगवान् ही जगत् के तीनों कारण है, जो कार्यरूप में परिणत हो जाए उसे उपादान कारण कहते हैं। सूक्ष्म जड़-चेतन से विशिष्ट ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है और स्थूल जड़-चेतन से युक्त ब्रह्म ही कार्य हैं। भगवान् अनन्त कल्याण गुणों एवं दिव्य विभूतियों से युक्त हैं। इसलिए सगुण कहे जाते हैं। प्राकृत सत्त्व, रज और तम–ये तीन गुण भगवान् में नहीं रहते हैं, अतः वे निर्गुण कहे जाते हैं। जो श्रुति वाक्य ब्रह्म को निर्गुण कहते हैं, उनका भाव यही है कि ब्रह्म में किसी प्रकार का कोई दोष नहीं है। दोष प्रकृति में होते हैं, उसी के सम्बन्ध से कर्मानुसार बद्ध जीव भी दोषी हो जाते हैं। भगवान् बद्ध जीव और प्रकृति से विलक्षण हैं। उनके पाँच रूप हैं—पर, व्यूह, वैभव, अर्चा और

अन्र्यामी। उनमें पर वासुदेव, वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य आदि गुणों के कारण मानव कल्याण के लिए ईश्वरीय स्वभाव को साथ लिए हुए अपनी इच्छा से वसुदेव के घर मथुरा में प्रकट हुए थे। ब्रह्म में जिन गुणों का वर्णन किया गया है, से सब गुण गीता के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण में पाये जाते हैं। इसलिए गीता में सर्वत्र भगवान् उवाच ऐसा ही कहा गया है, श्रीकृष्ण उवाच कहीं नहीं। जीवों के जन्म-कर्म पूर्व कर्मानुसार होते हैं; परन्तु भगवान् के जन्म-कर्म कर्मानुसार नहीं होते उनके जन्म-कर्म में दिव्यता रहती है। भगवान् के जन्म की दिव्यता उनके अवतार प्रसङ्ग से स्पष्ट हो जाती है। भगवान् कृष्ण माँ देवकी के गर्भ से साक्षात् विष्णु के रूप में प्रकट हुए थे। उनकी चार भुजायें थीं। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म लिये हुये थे। दिव्य आभूषणों एवं वस्तुओं से अलङ्कृत थे। माता देवकी की प्रार्थना पर द्विभुज होकर मथुरा से गोकुल चले गये थे। गोकुल, वृन्दावन, मथुरा तथा द्वारिका में भगवान् की मानवातीत अनेक लीलायें हुई हैं। पूतना, तृणावर्त आदि राक्षसों का संहार करना, अपने मुख में यशोदा को दो बार विश्वरूप का दर्शन कराना, कालियनाग का दमन करना, करोड़ों गाय बछड़ों का रूप धारण कर ब्रह्मा के मोह का निवारण करना, व्रजवासियों को जल से बचाने के लिए गोवर्द्धन को उठाकर इन्द्र के गर्व को भङ्ग करना, अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन कराना तथा विश्व कल्याण के लिए गीता का उपदेश करना आदि भगवान् के ये समस्त कर्म दिव्य रहे हैं। इसीलिए भगवान् ने कहा है कि जो मेरे दिव्य जन्म-कर्म को जानते हैं, वे मुक्ति के पात्र बन जाते हैं।

सृष्टि की रचना आदि कर्मों को करते हुए भगवान् निःस्पृह रहते हैं, इसलिए वे कर्म भगवान् के लिए बन्धनकारक नहीं होते। भगवान् जीवों के पूर्व गुण-कर्म के अनुसार उनकी रचना करते हैं। इसलिए जगत् में निर्धन-धनी, मूर्ख-पण्डित, रोगी-निरोग आदि विषमता से भगवान् निर्दयी एवं विषयदर्शी नहीं माने जाते।

श्रीभगवान् के अवतार की दिव्यता

जन्म कर्म च मे दिव्यमेव या वेति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि मेरे दिव्य जन्म और कर्म को यथार्थ रूप से जो पुरुष जान जाता है, वह प्राकृत शरीर छोड़ने के उपरान्त पुनः दूसरा शरीर धारण नहीं करता। जैसे जीवों का जन्म कर्मानुसार कर्मफल भोगने के लिए होता है और उनका शरीर प्राकृत रहता है, वैसे श्रीभगवान् का जन्म कर्मानुसार कर्मफल भोगने के लिए नहीं होता है। वे अपने सङ्कल्प रूप ज्ञान से भक्तों के कल्याणार्थ देव, मनुष्यादि शरीर से प्रकट होते हैं। इसलिए उनका शरीर पञ्चभूत का बना हुआ नहीं रहता, किन्तु दिव्य अप्राकृत होता है। उनकी दिव्यता की झाँकी श्रीमद्भागवत महापुराण में कृष्णावतार के प्रसङ्ग में स्पष्ट दृष्टिगत होती है।

उनके अवतार काल में दिशाएँ स्वच्छ प्रसन्न थीं। निर्मल आकाश में तारे जगमगा रहे थे। पृथ्वी के बड़े-बड़े नगर, छोटे-छोटे गाँव, अहीरों की बस्तियाँ और हीरे आदि की खानें मङ्गलमय हो रही थीं। नदियों का जल निर्मल हो गया था। रात्रि के समय भी सरोवरों में कमल खिल रहे थे। वन में वृक्षों की पङ्क्तियाँ रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पों के गुच्छों से लद गयी थीं। कहीं पक्षी चहक रहे थे, तो कहीं भौंरे गुनगुना रहे थे। उस समय परम पवित्र और शीतल-

मन्द-सुगन्ध वायु अपने स्पर्श से लोगों को सुखदान करती हुई बह रही थी। ब्राह्मणों के अग्निहोत्र की कभी न बुझने वाली अग्नियाँ जो कंस के अत्याचार से बुझ गयी थीं, वे इस समय अपने-आप जल उठीं।

संत पुरुष पहले से ही चाहते थे कि असुरों की बढ़ोत्तरी न होने पाये। अब उनका मन सहसा प्रसन्नता से भर गया। जिस समय भगवान् के आविर्भाव का अवसर आया, स्वर्ग में देवताओं की दुन्दुभियाँ अपने-आप बज उठीं। किन्नर और गन्धर्व मधुर स्वर में गाने लगे तथा सिद्ध और चारण भगवान् के मङ्गलमय गुणों की स्तुति करने लगे। विद्याधारियाँ अप्सराओं के साथ नाचने लगीं। बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि आनन्द से भरकर पुष्पों की वर्षा करने लगे। जल से भरे हुए बादल समुद्र के पास जाकर धीरे-धीरे गर्जना करने लगे। उसी समय भाद्रपदकृष्ण पक्ष शुद्ध अष्टमी एवं शुद्ध रोहिणी नक्षत्र में आधी रात चन्द्रोदय होने पर बुधवार वृष लग्न में भगवान् श्रीकृष्ण का मथुरा के कारागार में देवकी के गर्भ से प्रादुर्भाव हुआ। उस समय खमाणिक्य नामक ज्योतिर्ग्रन्थ के अनुसार चन्द्रमा, मंगल, बुध और शनि अपने-अपने उच्च स्थान में थे।

भगवान् श्रीकृष्ण अवतार के समय में एक अद्भुत बालक थे, उनके नेत्र कमल के समान कोमल और विशाल थे। चार सुन्दर हाथों में शङ्ख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए थे। वक्ष:स्थल पर श्रीवत्स का चिह्न अत्यन्त सुन्दर सुवर्णमयी रेखा थी। गले में कौस्तुभमणि झिलमिला रही थी। वर्षा-कालीन मेघ के समान परम सुन्दर श्यामल शरीर पर मनोहर पीताम्बर फहरा रहा था। बहुमूल्य वैदूर्यमणि के किरीट और कुण्डल की कान्ति से सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल सूर्य की किरणों के समान चमक रहे थे। कमर में चमचमाती करधनी की लडियाँ लटक रहीं थे। बाहों में बाजूबन्द और कलाइयों में कङ्कण शोभायमान हो रहे हैं। इन सब आभूषणों से सुशोभित बालक के अङ्ग-अङ्ग से अनोखी छटा छिटक रही थी। उनका प्रथम श्रीवसुदेव ने दर्शन कर दिव्यगुणों द्वारा स्तवन किया। तदनन्तर श्रीदेवकी ने उनका दर्शन कर दिव्यगुणों द्वारा स्तवन करती हुई उनसे प्रार्थना की कि—

उपसंहरविश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्।
शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम्।।

अर्थात् आपका यह रूप अलौकिक है। आप शङ्ख, चक्र, गदा और कमल की शोभा से युक्त अपना यह चतुर्भुज रूप छिपा लीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि आप (देवकी-वसुदेव) पूर्व जन्म में कठिन तपस्या करके मुझ नारायण से पुत्र रूप में मुझे प्राप्त करने के लिए वरदान माँगा था। वही नारायण तुम्हारा पुत्र बनकर आया हूँ।

एतद् वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते।।

अर्थात् मैं नारायण रूप में पूर्वजन्म के स्मरण दिलाने के लिए पुत्र रूप में प्रकट हुआ हूँ। अगर मैं मनुष्य रूप में तुम्हारे सामने प्रगट होता तो कभी तुम्हें विश्वास नहीं होता कि मेरा पुत्र नारायण स्वरूप है।

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म एवं कर्म विलक्षण होते हैं। पूतना आदि राक्षसों की मुक्ति प्रदान, गोवर्धनधारण, कालियनाग का उद्धार, कंस का संहार तथा वैदिक धर्म के अनुकूल चलने वाले भक्तों की रक्षा आदि कर्म प्राकृत देव, मनुष्यादि के लिये सम्भव नहीं है। भगवान् के उपर्युक्त दिव्य जन्म एवं कर्म के रहस्य का तत्वत: ज्ञान प्राप्त करने वाले को उनके चरण कमलों में निर्मल प्रेम का होना स्वाभाविक ही है। फलत: तदाकार भावना हो जाने से इस शरीर का परित्याग के बाद पुन: उस व्यक्ति को नूतन शरीर धारण रूप जन्म नहीं लेना पड़ता है।

गृह-प्रवेशमुहूर्त्त

१. कार्तिक-शुक्ल-षष्ठी गुरुवार २६-१०-२०१७ को रात्रि में ०३:३० से ०५:४२ तक
२. कार्तिक-शुक्ल-सप्तमी शुक्रवार २७-१०-२०१७ को दिन में ०७:५८ से १०:१४ तक
३. अगहन-कृष्ण-दशमी सोमवार १३-११-२०१७ को रात्रि में ०२:१९ से ०४:३९ तक
४. अगहन-कृष्ण-द्वादशी बुधवार १५-११-२०१७ को दिन में ०३:२२ से ०३:५१ तक
५. अगहन-शुक्ल-एकादशी बुधवार २९-११-२०१७ को प्रातः ०५:४६ से ०८:०१ तक

●

गृहारम्भमुहूर्त्त

१. अगहन-शुक्ल-एकादशी बुधवार २९-११-२०१७ को प्रातः ०५:४६ से ०८:०१ तक

●

द्विरागमनमुहूर्त्त

उत्तर से दक्षिण, ईशान से नैर्ऋत्य, वायुकोण से अग्निकोण के लिए—

१. अगहन-शुक्ल-पञ्चमी-गुरुवार २३-११-२०१७ को दिन में ०१:५१ से ०३:१८ तक।
२. अगहन-शुक्ल-षष्ठी-शुक्रवार २४-११-२०१७ को प्रातः ०६-०७ से ०७-२९ तक।

नैर्ऋत्य से ईशान, वायुकोण से अग्निकोण के लिए—

३. अगहन-शुक्ल-एकादशी-बुधवार २९-११-२०१७ को दिन में ०१:२६ से ०२:५३ तक।
४. अगहन-शुक्ल-द्वादशी-गुरुवार ३०-११-२०१७ को प्रातः ०५:४२ से ०७:५७ तक।

उत्तर से दक्षिण, वायुकोण से अग्निकोण, ईशान से नैर्ऋत्यकोण के लिए—

६. पौष-कृष्ण-प्रतिपदा-सोमवार ०४-१२-२०१७ को दिन में ११:३४ से ०१:०४ तक।

पूर्व से पश्चिम, ईशान से नैर्ऋत्यकोण के लिए—

६. पौष-कृष्ण-चतुर्थी-गुरुवार ०७-१२-२०१७ को दिन में ०२:२० से ०३:५६ तक।

दक्षिण से उत्तर, अग्नि से वायुकोण के लिए—

७. फाल्गुन-शुक्ल-षष्ठी-बुधवार २१-०२-२०१८ को दिन में ०७:२७ से ०८:५४ तक।
८. फाल्गुन-शुक्ल-एकादशी-सोमवार २६-०२-२०१८ को दिन में ०२:३६ से ०४:४० तक।

दक्षिण से उत्तर अग्नि से वायुकोण के लिए—

९. चैत्र-कृष्ण-सप्तमी-गुरुवार ०८-०३-२०१८ को प्रातः ०५ बजे से ०७:५७ तक।

●